बाल महाभारत

जय प्रकाश शास्त्री



10·2

बाल महाभारत



मधुर-प्रकाशन, दिल्ली-110006

बाल महाभारत

(हिन्दी भाषा में सरल, रोचक एवं शिक्षाप्रद ऐतिहासिक कथाएं)

—जयप्रकाश शास्त्री

मूल्य : 40.00
प्रथम संस्करण : 2009

प्रकाशक : मधुर-प्रकाशन, 2804, गली आर्य समाज, बाज़ार सीता राम, दिल्ली-110006 फोन : 23238631
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रैस, 2046, बाज़ार सीता राम, दिल्ली-110006
लेजर टाईपसैटिंग : एम. एस. ग्राफिक्स, दिल्ली-53

भूमिका

वर्तमान काल में देश में अनेक प्रकार के दुराचरण, कुरीतियां और भ्रष्टाचार व्यापकरूप में फैले हुए हैं। उनमें जहां ब्रह्मचर्य का अभाव, विद्याहीनता, परस्पर वैमनस्य तथा दुराचार अधिक हैं, वहां जुआ और मद्यपान की रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। जुए से जो हानियां और दुरावस्था हो जाती है, उसका उदाहरण यद्यपि राजा नल के चरित्र से भी मिलता है, किन्तु महाभारत उसका सर्वाधिक ज्वलन्त प्रमाण है। शराब से किस प्रकार कुल का नाश होता है, इसका भी उदाहरण महाभारत में मिलता है।

जुए के खेलने से जो भी अनर्थ हो जाते हैं, यह आप इस पुस्तक के वन-पर्व में पढ़ेंगे और शराब से जो विनाश होता है, उसे मौसल-पर्व में पढ़ेंगे।

परस्पर वैमनस्य भी हानिकारक होता है। कौरव-पाण्डव भाई-भाई थे फिर भी उनमें परस्पर वैमनस्य था, इसी वैमनस्य के कारण उन्होंने कितने कष्ट उठाये और कितने वीरों, विद्वानों, महात्माओं का विनाश हुआ, यह भी इस पुस्तक के पढ़ने से ज्ञात होगा।

देश में व्याप्त कुरीतियों का निवारण हो और उनका प्रचार बन्द हो जाये। इसी दृष्टि से यह **बाल महाभारत** सरल, रुचिपूर्ण, मनोरंजक भाषा और बालोपयोगी लिखा गया है। आशा है इससे बालक, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध सभी नर-नारी लाभान्वित होंगे।

— जयप्रकाश शास्त्री

महाभारत का युद्ध ऐतिहासिक तथ्य है

प्रख्यात इतिहासवेत्ता श्री डाक्टर डी.सी. सरकार का एक वक्तव्य समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि महाभारत के युद्ध की घटना कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं, अपितु यह कोरी कल्पना ही है। उन्होंने कहा कि—

1. महाभारत युद्ध प्रारम्भ में एक पारिवारिक अथवा कबीले का झगड़ा था। 2. धीरे-धीरे विभिन्न कवियों द्वारा इसे परिष्कृत तथा परिमार्जित रूप दिया गया। 3. भारत में आर्यों के आगमन का काल ईसापूर्व द्वितीय सहस्राब्दी के मध्य में माना जाता। 4. वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख नहीं है। यद्यपि भारतीय साहित्य की प्रारम्भिक रचनाओं में बार-बार कुरुक्षेत्र का नाम आया है।

(1) इस सम्बन्ध में हमारा विचार है कि श्री सरकार जब स्वयं मानते हैं कि यह युद्ध प्रारम्भ में एक पारिवारिक झगड़ा था तो यह वास्तविक ही हुआ, काल्पनिक नहीं। आजकल भी देखने में आता है कि गली-मोहल्लों में खेलते-खेलते, छोटे-छोटे बच्चों की लड़ाई बड़ों में भी पहुंच जाती है और फिर यह एक भयंकर रूप भी धारण कर लेती है। यही बात महाभारत के युद्ध के सम्बन्ध में भी है। कौरव और पाण्डव आपस में चाचा-ताऊ के भाई थे। बचपन में वे खेलते थे तो उनकी आपस में नहीं बनती थी और आपस में लड़ाई हो जाती थी। उनका बचपन का बैमनस्य उनके बड़े हो जाने पर भी उनमें बना रहा और यही उनकी लड़ाई का कारण था। पहले तो यह उनकी पारिवारिक लड़ाई ही थी, बाद में इसने विशाल रूप धारण कर लिया। यह वास्तविक ही है, कल्पना नहीं।

(2) इस बात से हम भी सहमत हैं कि महाभारत के काव्य में जिसका नाम पहले जय था, धीरे-धीरे अनेक कवियों ने परिमार्जन, परिशोधन एवं परिवर्द्धन किया है।

महाराजा भोज ने अपने संजीवनी नामक इतिहास में लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छः सौ श्लोकयुक्त सब दस सहस्र श्लोकों को प्रमाण महाभारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय बीस सहस्र। महाराजा भोज कहते है कि मेरे पिताजी के समय में पच्चीस और अब मेरी आधी आयु में तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारत की

पुस्तक मिलती है।

(3) डा. सरकार ने भारत में आर्यों के आगमन का काल ईसा-पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी के मध्य माना है अर्थात् अब से अधिक से अधिक तीन सहस्र वर्ष पूर्व आर्य भारत में आए—यह उनकी मान्यता है। इस सम्बन्ध में हम समझते हैं कि श्री सरकार की इस मान्यता के मूल में विदेशी दासता की भावना कार्य कर रही है। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि आर्य भारत में कहीं बाहर से नहीं आये, उनकी उत्पत्ति तो सृष्टि के आरम्भ में तिब्बत से आकर यहां बसे। उन आर्यों के बसने के कारण ही इस देश का नाम आर्यावर्त्त पड़ा था।

(4) मान्य डा. साहब को अपनी धारणा में परिवर्तन करना होगा। वेदों का रचनाकाल वही है, जो सृष्टि की उत्पत्ति का काल है। सृष्टि की उत्पत्ति को 1 अरब 97 करोड़ 29 लाख 46 हजार 73 वर्ष हुए हैं। इतना ही समय वेदों की रचना को हुआ है। अतः स्वयंसिद्ध है कि वेदों में या वैदिक साहित्य में महाभारत के युद्ध का उल्लेख नहीं हो सकता। जबकि महाभारत के युद्ध को केवल पांच हजार वर्ष ही हुए है। और क्यों कि वेद सृष्टि के प्रारम्भ में ही बने, इसलिए उनमें इतिहास नहीं हो सकता।

इन सब से श्री डा. सरकार की धारणा निरस्त हो जाती है और उन्हें यह धारणा बदलनी ही पड़ेगी कि महाभारत का युद्ध कल्पना मात्र है।

एक बात और, यदि महाभारत का युद्ध कल्पनामात्र है तो महाभारत के अनेक घटनास्थल कुरुक्षेत्र और हस्तिनापुर में अब भी विद्यमान हैं, क्या वे भी काल्पनिक ही है?

— जयप्रकाश शास्त्री
बुलन्दशहर (उ. प्र.)

क्या? कहां?



बाल महाभारत

1. आदि पर्व

राजा दुष्यन्त

आज से लगभग 5 हजार वर्ष पुरानी बात है। कण्व ऋषि वन में तपस्या किया करते थे। एक दिन वह गौमती नदी में स्नान करने गये। एक सुन्दर नन्हीं कन्या उनको मार्ग में पड़ी हुई मिली। वह बिलख-बिलख कर रो रही थी। ऋषि को उस पर दया आ गई, उसे उठाकर वह अपने आश्रम में ले गये और वहीं उसका पालन-पोषण करने लगे। धीरे-धीरे वह कन्या बड़ी हो गई। ऋषि ने उसका नाम शकुन्तला रख दिया।

उन दिनों हमारे देश का राजा दुष्यन्त था। हस्तिनापुर उसकी राजधानी थी। वह परम प्रतापशाली था। अपनी प्रजा का पालन बड़ी योग्यता के साथ करता था। उसके राज्य में पाप तो कोई करता ही नहीं था। सभी धर्म के प्रेमी थे। चोरी, भूख अथवा रोग का भय बिल्कुल नहीं था। सभी लोग अपने-अपने धर्म में सन्तुष्ट थे और राज्य में निर्भय रहते थे। समय पर वर्षा होती थी। पृथ्वी सब प्रकार के अन्न, रत्न और पशुओं से परिपूर्ण थी।

दुष्यन्त स्वयं एक बलवान् राजा था। वह गदायुद्ध में बहुत प्रवीण था। घोड़े और हाथी की सवारी में भी उसके समान कोई नहीं था। देशवासी उसका प्रेम से सन्मान करते थे और वह धर्म से सब पर शासन करता था।

एक दिन की बात है कि राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए वन में मार्ग भूल कर कण्व ऋषि के आश्रम की ओर आ निकले। वहाँ उन्होंने एक उपवन देखा। वह उपवन बड़ा ही सुन्दर था। यही ऋषि का आश्रम था। उसको देखने की इच्छा से राजा दुष्यन्त ने आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ उस समय कण्व ऋषि नहीं थे। आश्रम को सूना देखकर राजा दुष्यन्त ने ऊँचे स्वर से पुकारा—यहाँ कौन है? दुष्यन्त की आवाज सुनकर एक लक्ष्मी के समान सुन्दरी कन्या तपस्विनी के वेष में आश्रम से निकली। राजा दुष्यन्त को देखकर उसने सम्मानपूर्वक

कहा—आपका स्वागत है। फिर उसने राजा का आतिथ्य करके उससे स्वास्थ्य और कुशल के सम्बन्ध में प्रश्न किया। तदनन्तर राजा ने पूछा—मैं परमभाग्यशाली महर्षि कण्व का दर्शन करने के लिए आया हूँ, इस समय वे कहाँ हैं? शकुन्तला ने उत्तर दिया—मेरे पूजनीय पिताजी फल-फूल लाने के लिए आश्रम से बाहिर गये हैं, आप कुछ काल प्रतीक्षा कीजिये, तब उनसे मिल सकेंगे!

राजा दुष्यन्त शकुन्तला के रूप और गुणों से प्रभावित हो गये। बोले—सुन्दरी तुम कौन हो? तुम्हारे पिता कौन हैं? यहाँ तुम किसलिए आई हो? यह सब मैं जानना चाहता हूँ। शकुन्तला ने बड़ी मधुरता के साथ कहा—राज़न्! एक ऋषि के पूछने पर मेरे पूजनीय पिता कण्व ने मेरे जन्म की कथा सुनाई थी। वही मैं आपको बता देती हूँ। जिस समय विश्वामित्र जी तपस्या कर रहे थे, उस समय इन्द्र ने उनके तप में विघ्न डालने के लिए मेनका नाम की एक अप्सरा भेजी थी। उसी के संयोग से मेरा जन्म हुआ। माता मुझे वन में छोड़कर चली गई, तब शकुन्तों (पक्षियों) ने वन में सिंह आदि भयानक पशुओं से मेरी रक्षा की थी, इसीलिए मेरा नाम शकुन्तला पड़ा। शरीर का जनक, प्राणों का रक्षक और अन्नदाता—ये तीनों ही पिता कहलाते हैं। इसलिए महर्षि कण्व मेरे पिता हैं।

शकुन्तला के जन्म की कथा सुनकर दुष्यन्त ने कहा—तुमने मेरा मन मोहित कर लिया है, इसलिए तुम मेरी पत्नी हो जाओ। शकुन्तला बोली—मेरे पिताजी इस समय यहाँ नहीं है, आप कुछ समय तक प्रतीक्षा कीजिये। वे आकर मुझे आपको समर्पित कर देंगे। फिर दुष्यन्त बोला—मैं यह चाहता हूँ कि तुम मुझे स्वयं वरण कर लो। तुम धर्म के अनुसार स्वयं ही मुझे अपना दान करो। दुष्यन्त की बात सुनकर शकुन्तला ने उत्तर दिया, यदि आप इसे ही धर्म समझते हैं और मुझे स्वयं अपने को दान करने का अधिकार है तो आप मेरी शर्त सुन लीजिये। आप यह प्रतिज्ञा कीजिये कि—मेरे बाद तुम्हारा ही पुत्र सम्राट् होगा। तो मैं आपको स्वीकार करती हूँ। दुष्यन्त ने बिना कुछ सोचे-समझे ही यह प्रतिज्ञा कर ली और इसके बाद दोनों का विवाह हो गया।

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को विश्वास दिलाया कि, मैं तुम्हें लाने के लिए सेना भेजूँगा और शीघ्र से शीघ्र तुम्हें अपने महल में ले चलूँगा। ऐसा कहकर राजा दुष्यन्त अपनी राजधानी को चला गया। किन्तु उसके मन

में बड़ी भारी चिन्ता यह थी कि महर्षि कण्व यह सब सुनकर न जाने क्या कहेंगे! कुछ समय के पश्चात् ही महर्षि कण्व भी आश्रम में आ गये। वहाँ आकर उन्हें सब समाचार ज्ञात हो गये। उन्होंने शकुन्तला से कहा;–बेटी! तुमने मुझसे बिना पूछे जो कार्य किया है, वह धर्म के विरुद्ध नहीं है। क्षत्रियों के लिए गान्धर्व-विवाह अनुकूल है। दुष्यन्त एक धर्मात्मा एवं श्रेष्ठ पुरुष हैं। उसके संयोग से बड़ा बलवान् पुत्र उत्पन्न होगा और वह सारी पृथ्वी पर राज्य करेगा।

महाराजा भरत

राजा दुष्यन्त तो अपनी राजधानी चले गये और शकुन्तला महर्षि कण्व के आश्रम में ही रही। उचित समय पर शकुन्तला के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त सुन्दर और बचपन में ही बड़ा बलवान् था। महर्षि कण्व ने विधिपूर्वक उसके सब संस्कार किये। उसके दाँत बड़े सफ़ेद और नुकीले थे। कन्धे सिंह के समान थे? सिर बड़ा और मस्तक ऊँचा था। यह बालक ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी देवता का पुत्र हो। वह छः वर्ष की आयु में ही सिंह, बाघ, सूअर और हाथी आदि भयंकर जन्तुओं के आश्रम के वृक्षों से बाँध देता था। कभी उन पर चढ़ता, कभी डांटता, कभी उनके साथ खेलता और कभी दौड़ लगाता था। हिंसक जन्तुओं का उसने दमन कर लिया था। इसलिए आश्रमवासी उस बालक को **सर्वदमन** कहने लगे। यह बड़ा विक्रमी, ओजस्वी और बलवान् था।

धीरे-धीरे बालक की आयु और अधिक हो गई। एक दिन महर्षि कण्व ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि–'कन्या का बहुत दिनों तक पितृकुल में रखना कीर्ति, चरित्र और धर्म का घातक है, इसलिए शकुन्तला को उसके पुत्र के साथ पति के घर पहुँचा आओ। महर्षि की आज्ञानुसार शिष्य **शकुन्तला** और **सर्वदमन** को लेकर हस्तिनापुर चल दिये।

राज-सभा में पहुँच कर शकुन्तला ने सम्मानपूर्वक निवेदन किया–राजन्! **यह आपका पुत्र है, अब आप इसे युवराज बनाइये।** शकुन्तला की बात सुनकर दुष्यन्त ने कहा–'अरी दुष्टा! तू किसकी पत्नी है, मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं है। तेरे साथ मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं। दुष्यन्त की बात सुनते ही शकुन्तला की आँखें लाल हो गईं, होठ फड़कने लगे, और वह दृष्टि टेढ़ी करके उसकी ओर देखने लगी। कुछ देर ठहर कर शकुन्तला दुष्यन्त से बोली–'राजन्!

आप ऐसी बात जान बूझकर ऐसा क्यों कह रहे हैं कि मैं नही जानता? ऐसी बात तो नीच मनुष्य कहते हैं। हृदय पर हाथ रखकर ठीक-ठीक कहिये। आपका हृदय कुछ और कह रहा है और आपकी वाणी कुछ और। यह तो बहुत बड़ा पाप है। आप समझ रहे हैं कि उस समय मैं अकेला था, कोई गवाह नहीं है। परन्तु परमात्मा तो सबके हृदय में बैठा है। वह सबके पाप-पुण्य जानता है। इसी प्रकार शकुन्तला ने दुष्यन्त को अनेक बातें कहीं। इसके बाद शकुन्तला ने फिर कहा कि—पत्नी उसे कहते हैं जो घर के काम-काज में चतुर हो, पुत्रवती हो, पति को प्राण के समान मानती हो और सच्ची पतिव्रता हो! पत्नी के द्वारा धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति होती है। मोक्ष की प्राप्ति में सहायता मिलती है। पत्नी की सहायता से श्री श्रेष्ठ कर्म होते हैं। घोर विपत्ति के समय और मरने पर भी पत्नी ही अपने पति का अनुगमन करती है। इस लोक और परलोक में पत्नी जैसा सहायक और कौन है? पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को देखकर भला कितना आनन्द होता है! अपने धूल से लथपथ पुत्र को भी हृदय से लगाने में जो सुख मिलता है, उससे बढ़कर और क्या है! आपका पुत्र स्वयं आपके सामने खड़ा है। प्रेमभरी दृष्टि से आपकी ओर देखता हुआ, आपकी गोद में बैठने के लिए उत्सुक है। आप इसका तिरस्कार क्यों कर रहे हैं?

शकुन्तला की बात सुनकर दुष्यन्त ने कहा—मुझे मालूम नहीं कि मैंने तुमसे पुत्र उत्पन्न किया है! तुम्हारी एक भी बात विश्वास करने योग्य नहीं है। इतने थोड़े दिनों में भला यह बालक साल के वृक्ष जैसा कैसे हो सकता है? जाओ, तुम यहाँ से चली जाओ। शकुन्तला ने फिर कहा—'राजन्! कपट मत करो। सत्य सहस्रों अश्वमेध यज्ञों से भी श्रेष्ठ है। सब वेदों के पढ़ने और सारे तीर्थों में स्नान करने से भी सत्य बढ़कर है। सत्य के बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठ से बढ़कर पाप भी कुछ नहीं है। यदि असत्य से ही तुम्हारा प्रेम है और मेरी बात पर विश्वास नहीं करते हो, तो मैं स्वयं चली जाऊँगी। मैं झूठ के साथ नहीं रहना चाहती। फिर भी मैं इतना कह देती हूँ कि चाहे तुम इस पुत्र को अपनाओ या नहीं, मेरा यह पुत्र ही सारी पृथ्वी पर शासन करेगा। इतना कहकर शकुन्तला दुःखी मन से वहाँ से चल पड़ी।

इसी समय राजसभा में उपस्थित होकर ऋषि-मुनियों ने भी दुष्यन्त से कहा—'पुत्र पिता का ही होता है क्योंकि पिता ही पुत्र के रूप में उत्पन्न होता

है। तुम पुत्र का पालन-पोषण करो। शकुन्तला का अपमान मत करो। सचमुच यह पुत्र तुम्हारा ही है। शकुन्तला की बात सर्वथा सत्य है। तुम्हें हमारी आज्ञा मानकर ऐसा करना ही चाहिए। तुम्हारे भरण-पोषण के कारण ही इसका नाम भरत होगा।' दुष्यन्त ने पुरोहित और मंत्रियों से कहा—आप ऋषियों की बात सुन लें। मैं भी ठीक-ठीक यही समझता हूँ कि यह मेरा पुत्र है। यदि मैं शकुन्तला के कहने से ही इसे स्वीकार कर लेता तो सारी प्रजा इस पर सन्देह करती। इसीलिए मैंने शकुन्तला के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया है।

इसके बाद दुष्यन्त ने बालक स्वीकार कर लिया और उसका सिर चूमकर उसे छाती से लगा लिया। चारों ओर हर्ष छा गया। दुष्यन्त ने धर्म के अनुसार अपनी पत्नी का सत्कार किया और उससे कहा—मैंने तुम्हारे साथ जो सम्बन्ध किया था, वह किसी को मालूम नहीं था, अब सब लोग तुम्हें रानी के रूप में स्वीकार कर लें, इसीलिए मैंने ऐसा दुर्व्यवहार किया। लोग समझने लगते कि मैंने मोहित होकर तुम्हारी बात स्वीकार कर ली। मेरे पुत्र के युवराज होने में भी लोग आपत्ति करते। मैंने तुम्हें अत्यन्त क्रोधित कर दिया था। तुमने जो कुछ भी मुझे अप्रिय वचन कहे हैं, मुझे उनका कुछ भी विचार नहीं है। हम दोनों एक-दूसरे के प्रिय हैं।

समय आने पर भरत को युवराज बना दिया गया। दूर-दूर तक भरत का शासन प्रसिद्ध हो गया। उसने राजाओं को जीतकर अपने अधीन कर लिया और धर्म का पालन करके अपूर्व यश प्राप्त किया। वह सारी पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट् बना। उसने इन्द्र के समान अनेक यज्ञ किये। महर्षि कण्व ने भरत से एक अश्वमेध यज्ञ कराया। यों तो उसमें सभी ब्राह्मणों को दक्षिणा दी गई थी, परन्तु महर्षि कण्व को सहस्र पद्म मुहरें दी गयीं। भरत की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। इस देश का नाम पहिले आर्यावर्त्त था, फिर भरत के नाम से ही भारत पड़ा। भरत के वंश को भरत-वंश कहने लगे। उनके वंश में अनेक ब्रह्मज्ञानी राजर्षि हुए, जिनके नाम गिनाने भी कठिन हैं।

राजर्षि शान्तनु की कथा

महाराजा भरत की कई पीढ़ियों के पश्चात् इसी वंश में राजर्षि शान्तनु एक बड़े प्रसिद्ध राजा हुए। ये बड़े मेधावी, धर्मात्मा, और सत्यनिष्ठ थे। बड़े-बड़े देवर्षि और राजर्षि उनका सत्कार करते थे। इन्द्रिय-निग्रह, दान, क्षमा, ज्ञान, धैर्य

और तेज आदि गुण उनमें स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। वे धर्मनीति तथा अर्थनीति में निपुण थे। वे केवल भरत वंश के ही नहीं, सारी प्रजा के एकमात्र रक्षक थे। उन दिनों धार्मिकता में सबसे बढ़-चढ़कर वे ही थे। प्रजा का शोक, भय और संकट मिट गये थे। सब सुख की नींद सोते और जागते थे।

राजा शान्तनु की भी राजधानी हस्तिनापुर थी। वहीं से वे सारी पृथ्वी का शासन करते थे। उनके राज्य में पशु, शूकर, हरिण और पक्षियों तक को कोई मार नहीं सकता था। ऋषि-मुनियों के यज्ञ के लिये उद्योग होता रहता था। राजा दुःखी, अनाथ और पशु-पक्षी सभी की रक्षा करते थे। उस समय सब सत्य बोलते थे। सबका मन दान के लिए उत्साहित था।

छत्तीस वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए राजा शान्तनु ने वनवासी जैसा जीवन व्यतीत किया। फिर उनका विवाह गंगादेवी के साथ हुआ। रानी गंगादेवी बड़ी धर्मपरायणा, विदुषी और बुद्धिमती थी। इनके गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम देवव्रत रखा गया। माता ने देवव्रत को बालपन में बहुत अच्छी शिक्षा दी। इसके बाद उसने वशिष्ठ ऋषि से सब वेद पढ़ लिए और शास्त्रास्त्रों का भी पूरा अभ्यास कर लिया। वह रणविद्या में इतना चतुर था कि उस समय सारे भारतवर्ष में उसके समान कोई वीर नहीं था।

जब देवव्रत बड़ा हुआ तब इसकी माता का देहान्त हो गया। देवव्रत का मन अपनी माता को स्मरण करते-करते चिन्तित रहने लगा। उसकी चिन्ता को दूर करने के विचार से राजा शान्तनु ने उसे युवराज बना दिया और अब वे राज-काज में उससे सहायता लेने लगे। देवव्रत के मन का शोक तो कम होने लगा किन्तु राजा शान्तनु अपनी रानी के वियोग से सदा उदास ही रहते थे।

एक दिन वह शिकार खेलने के लिए वन में गए। वहाँ घूमते-घूमते, नदी में नाव चलाती हुई, एक मल्लाह की रूपवती कन्या को देखकर वे उस पर मोहित हो गए। उन्होंने कन्या के पिता को बुलाकर, उसकी कन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। कन्या का नाम सत्यवती था। वह बहुत रूपवती और गुणवती थी। सत्यवती के पिता ने राजा से हाथ जोड़कर कहा—महाराज! यदि आप इस कन्या को अपनी धर्मपत्नी बनाना चाहते हैं, तो आप मेरी एक बात स्वीकार करें, तभी इसके साथ आपका विवाह हो सकता है।, अन्यथा नहीं। आप जैसा वर मुझे कहाँ प्राप्त हो सकता है! शान्तनु ने कहा—तुम अपनी शर्त बताओ क्या है? निषादराज ने कहा—इसके गर्भ से जो पुत्र हो, वही आपके बाद राज्य का अधिकारी हो, और कोई नहीं। शान्तनु

सत्यवती से विवाह करना चाहते थे, किन्तु फिर भी उन्होंने उसके पिता को बात स्वीकार नहीं की। वह धर्मात्मा थे। धर्म की मर्यादा नहीं तोड़ सकते थे। उन्होंने कहा—गद्दी का अधिकारी बड़ा पुत्र ही हुआ करता है, इसलिए यह बात नहीं मानी जा सकती। कन्या पर पिता का पूर्ण अधिकार होता है, इसलिए मैं आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करना चाहता। विवश हो, राजा शान्तनु अपनी राजधानी को लौट आये और वहाँ आकर वे सत्यवती की चिन्ता में ही रहने लगे।

इसी प्रकार धीरे-धीरे दिन, पक्ष और मास बीतने लगे। शान्तनु का मन न तो राज-काज में लगता था और न किसी कार्य में। उसे खाना-पीना भी नहीं भाता था। उनका मुख निस्तेज और शरीर कृश हो गया।

देवव्रत की भीष्म-प्रतिज्ञा

एक दिन देवव्रत ने अपने पिता को चिन्तित देखा, तो उनसे कहने लगे—पिताजी! पृथ्वी के सभी राजा आपके आधीन हैं। आप सब प्रकार सकुशल हैं। फिर आप दुःखी होकर निरन्तर क्या सोचते रहते हैं? आप इतने चिन्तित हैं कि न कभी मुझसे मिले हैं और न ही कभी शिकार खेलने जाते हैं। आपका चेहरा फीका और पीला पड़ गया है। आप दुर्बल हो गए हैं। कृपा करके अपना रोग बताइये, मैं, उसका प्रतिकार करूँ। यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो, तो उसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ।

राजा कहने लगे—'पुत्र! मुझको बहुत प्रिय हो। तुमसे कुछ भी अपराध नहीं हुआ। तुम पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। परन्तु मैं देखता हूँ कि तुम अस्त्र-शस्त्र की विद्या में प्रवीण हो और सर्वदा वीरता के कार्य में तत्पर रहते हो। हमारे इस महान् कुल में इस समय केवल एक तुम ही वंश को आगे चलाने वाले हो। जगत् में लोग निरन्तर मरते-मिटते रहते हैं। भगवान् न करें ऐसा हो, परन्तु यदि तुम पर विपत्ति आई, तो हमारे वंश का नाश हो जायेगा। यद्यपि तुम अकेले ही सैकड़ों पुत्रों से भी श्रेष्ठ हो और मैं व्यर्थ में बहुत-से विचार भी नहीं करना चाहता, फिर भी वंश की रक्षा करना भी तो धर्म ही है। यही मेरी चिन्ता का कारण है।

बुद्धिमान् देवव्रत पिता की चिन्ता कारण सुनकर तत्काल मन्त्री के पास गये और उससे बोले—'हे मन्त्री जी! पिता जी की चिन्ता को दूर करने के विषय

में आप मुझे कोई सम्मति दें या आप ही कोई उपाय करें। मन्त्री ने देवव्रत की बात सुनकर राजा की चिन्ता का सब कारण बता दिया।

पितृभक्त देवव्रत मन्त्री को साथ लेकर निषादराज के घर गये और उससे बोले—हे निषादराज! तुम अपनी कन्या का विवाह महाराज शान्तनु के साथ कर दो। मैं उनका पुत्र देवव्रत हूँ। तुम जो कुछ माँगो, मैं देने के लिए तैयार हूँ। निषादराज ने हाथ जोड़कर कहा—हे युवराज! मैं केवल यही माँगता हूँ कि महाराज शान्तनु के पीछे, मेरी पुत्री का पुत्र ही राज्य का अधिकारी हो। देवव्रत ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—हे निषादराज! मैं शपथ पूर्वक यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके गर्भ में जो पुत्र होगा, वही हमारा राजा होगा। मेरी यह कठोर प्रतिज्ञा अभूतपूर्व है। निषादराज अभी और कुछ चाहता था, उसने कहा—युवराज! आपने सत्यवती के लिए जो प्रतिज्ञा की है, वह आपके अनुरूप ही है। इसके सम्बन्ध में मुझे कोई सन्देह नहीं है। मेरे मन में एक सन्देह अवश्य है कि शायद आपका पुत्र सत्यवती के पुत्र से राज्य छीन ले। देवव्रत ने निषादराज का सब आशय समझ लिया और क्षत्रियों की भरी सभा में हाथ उठाकर प्रतिज्ञा की—निषादराज! तुम निर्भय रहो! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन-भर ब्रह्मचारी रहूँगा। न कभी विवाह करूँगा और न ही मेरी सन्तान होगी।

देवव्रत की इस भीष्म-प्रतिज्ञा को सुनते ही मन्त्री धन्य-धन्य कहने लगे और निषादराज ने दाँतों-तले उंगली दबाई। इसी भीष्म प्रतिज्ञा के करने के कारण देवव्रत का नाम भीष्म पड़ गया। अब से उन्हें सब भीष्म कहने लगे। पिता की इच्छा पूर्ण करने के लिए, अपने सुख का त्याग करना बड़े गौरव की बात है। पितृभक्ति का ऐसा उदाहरण संसार के किसी अन्य देश में मिलना कठिन है।

निषादराज ने अपनी कन्या सत्यवती को विदा किया। भीष्म उसे रथ पर बैठाकर मन्त्री के साथ हस्तिनापुर आ गये। राजा शान्तनु ने सब वृत्तान्त सुना तो वे गद्‌गद हो गये और भीष्म को छाती से लगाकर कहने लगे—पुत्र! मेरी इच्छा पूर्ण करने के लिए तुमने यह कठिन प्रतिज्ञा की है। तुम धन्य हो! ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें। फिर प्रसन्न होकर शान्तनु ने अपने पुत्र भीष्म को वर दिया—मेरे निष्पाप पुत्र! जब तक तुम जीना चाहोगे, तब तक मृत्यु तुम्हारा बाल भी बाँका न कर सकेगी।

चित्रांगद और विचित्रवीर्य

निषादराज की कन्या सत्यवती का विवाह राजा शान्तनु के साथ विधिपूर्वक हो गया। सत्यवती के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों ही बड़े होनहार और पराक्रमी थे। चित्रांगद ने अभी युवावस्था में प्रवेश भी नहीं किया था कि राजर्षि शान्तनु का स्वर्गवास हो गया। भीष्म जी ने सत्यवती की सम्मति से चित्रांगद को राजगद्दी पर बैठाया। उसने अपने पराक्रम से सभी राजाओं को पराजित किया। वह किसी भी मनुष्य को अपने समान नहीं समझता था। थोड़े ही दिन राज्य करने के बाद चित्रांगद एक युद्ध में मारे गए। फिर भीष्म जी ने विचित्रवीर्य को गद्दी पर बैठाया। विचित्रवीर्य बालक ही था, इसलिए सत्यवती की आज्ञा से भीष्म जी राज्य का काम-काज देखने लगे।

जब भीष्म जी ने देखा कि मेरा भाई विचित्रवीर्य विवाह के योग्य हो गया है, तब उन्होंने उसके विवाह का विचार किया। उन्हीं दिनों उन्हें यह समाचार मिला कि काशी-नरेश की तीन कन्याओं का स्वयम्वर हो रहा है। सत्यवती की आज्ञा लेकर वे काशीपुरी गये और स्वयम्वर में आये हुए सब राजाओं को जीत कर, तीनों कन्याओं को रथ पर बैठाकर अपने नगर में लौट आये। बड़ी कन्या अम्बा ने भीष्मजी से कहा कि मैंने मन में राजा शाल्व को वर लिया है, इसलिये आप मेरी इच्छा पूर्ण होने दीजिये। धर्मात्मा भीष्मजी ने अम्बा को आज्ञा दे दी कि वह अपनी इच्छानुसार विवाह कर सकते है। वह वहाँ से चली गई। शेष दोनों कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिका का विवाह उन्होंने विधिपूर्वक विचित्रवीर्य के साथ कर दिया। इसलिये उसका शरीर बहुत ही निर्बल हो गया। अच्छे-अच्छे वैद्यों की चिकित्सा भी सफल न हो सकी और अन्त में क्षय रोग से पीड़ित होकर उसका भी देहान्त हो गया। सत्यवती के दोनों ही पुत्र निस्सन्तान मर गये।

अब राज्य का अधिकारी कौन होगा? यही चिन्ता सत्यवती को रात-दिन रहने लगी। एक दिन उसने भीष्म को बुला कर कहा—देखो, तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य इस लोक में कोई सन्तान छोड़े बिना ही परलोकवासी हो गया है। तुम्हारे पिता के वंश का अब नाश ही होना चाहता है। इसलिये तुम विचित्रवीर्य की दोनों विधवा स्त्रियों से नियोग के द्वारा सन्तान उत्पन्न करके वंश की रक्षा करो। तुम स्वयं राजसिंहासन पर बैठो और प्रजा का पालन करो।

केवल माता सत्यवती ने ही नहीं, सभी सगे-सम्बन्धियों ने उन्हें ऐसा कहा। उस समय जितेन्द्रिय भीष्म ने उत्तर दिया—'माता! आप जानती हैं कि मैंने

आपके विवाह के समय क्या प्रतिज्ञा की थी। मैं पुनः प्रतिज्ञा करता हूँ कि—मैं त्रिलोकी का राज्य, ब्रह्मा का पद और मोक्ष का भी त्याग कर दूँगा, किन्तु सत्य नहीं छोडूंगा। वायु स्पर्श छोड़ दे, सूर्य प्रकाश छोड़ दे, अग्नि उष्णता छोड़ दे, चन्द्रमा शीतलता छोड़ दे और स्वयं धर्मराज भले ही अपना धर्म छोड़ दें, परन्तु मैं अपनी सत्य प्रतिज्ञा छोड़ने का विचार भी नहीं कर सकता।

जब भीष्म जी किसी प्रकार भी न माने, तब सत्यवती ने इस कार्य के लिये व्यास जी को कहा।

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म

व्यास जी के आने पर सत्यवती ने उनसे अपने मन की बात कही। व्यास जी ने सत्यवती की बात स्वीकार कर ली। व्यास जी बड़े कुरूप थे। इनके शरीर का रंग काला था और सिर पर बड़ी-बड़ी सूखी जटाएँ थीं। जब वे नियत समय पर बड़ी रानी के शयनगृह में गये, तब रानी ने उनको देखकर भय से आँखें बन्द कर लीं, जब तक व्यास जी वहाँ रहे, उसने आँखें नहीं खोलीं, इसलिये उस रानी के जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह जन्म से ही अन्धा था। उसका नाम धृतराष्ट्र रखा गया। दूसरी रानी व्यास जी को देखकर भय से पीली हो गई, इसलिए उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पीले रंग का था। उसका नाम पाण्डु रखा गया।

अब सत्यवती ने सोचा कि दोनों रानियों के पुत्र राजा होने के योग्य नहीं हैं। यह विचार कर उसने बड़ी रानी को व्यास जी के द्वारा फिर पुत्र उत्पन्न करने को कहा। रानी ने स्वीकार तो कर लिया, किन्तु भय के कारण उसका साहस न हुआ कि वह व्यास जी के पास जा सके। रानी ने अपने वस्त्र और आभूषण दासी को पहिनाकर व्यास जी के पास भेज दिया। उससे जो सन्तान उत्पन्न हुई, उसका नाम विदुर रखा गया।

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर चन्द्रमा की कला के समान बढ़ते गये। भीष्म जी राज्य का प्रबन्ध भी करते थे और इनकी देखभाल और शिक्षा का प्रबन्ध भी करते थे। धीरे-धीरे इनकी शिक्षा पूरी हो गई। धृतराष्ट्र शारीरिक बल में सबसे अधिक थे, पाण्डु धनुर्विद्या में सबसे प्रवीण हुए और विदुर बड़े भारी विद्वान् हुए। उनके बराबर धर्म और राजनीति का जानने वाला दूसरा कोई नहीं था। धृतराष्ट्र जन्म से अन्धे थे और विदुर दासी के पुत्र थे, इस कारण पाण्डु को ही राज्य मिला।

धृतराष्ट्र आदि का विवाह

गान्धार देश के राजा सुबल की कन्या गान्धारी सब लक्षणों से सम्पन्न और गुणवती थी। उसकी प्रशंसा चारों ओर फैल चुकी थी। भीष्म जी ने उसे धृतराष्ट्र के लिए ठीक समझा और सुबल के पास दूत भेजकर अपनी इच्छा प्रकट की। सुबल ने पहिले तो अपनी कन्या अन्धे को देना ठीक न समझा किन्तु बाद में कुल-प्रशंसा और उनके सदाचार पर विचार करके विवाह करना स्वीकार कर लिया। जब गान्धारी को यह पता चला कि मेरे भावी पति अन्धे हैं तब उसने अपनी आँखों पर कपड़े की पट्टी बाँध ली। गान्धारी का यह निश्चय था कि मैं अपने पतिदेव के अनुकूल रहूँगी। इसके भाई शकुनि ने उसे धृतराष्ट्र के पास पहुँचा दिया। भीष्म जी की अनुमति से उनका विवाह विधिपूर्वक हो गया। गान्धारी अपने चरित्र और सद्गुणों से अपनी पति और परिवार को प्रसन्न रखने लगी।

शूरसेन की पृथा नाम की अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। शूरसेन की बुआ के पुत्र कुन्तिभोज के कोई सन्तान नहीं थी। इस कारण शूरसेन ने यह कन्या कुन्तिभोज को गोद दे दी। पृथा का नाम कुन्ती भी था। यह बड़ी सात्विक, सुन्दरी और गुणवती थी। इसकी प्रसिद्धि भी दूर-दूर तक हो गई। कई राजा इसे विवाह के लिये माँगने लगे। इस लिए कुन्तिभोज ने स्वयम्वर किया। स्वयम्वर में कुन्ती ने पाण्डु को जयमाला पहना दी। दोनों का विधिपूर्वक विवाह हो गया। राजा पाण्डु अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौट आए।

महात्मा भीष्म जी ने पाण्डु का एक और विवाह करने का निश्चय किया। वे मद्रराज की राजधानी में गए। उनके कहने पर मद्रराज शल्य ने अपनी बहिन माद्री प्रसन्नचित्त से उन्हें दे दी। उसके साथ विधिपूर्वक विवाह करके वीर पाण्डु अपनी दोनों स्त्रियों के साथ आनन्द से रहने लगे।

भीष्म जी ने सुना कि राजा देवक के यहाँ एक सुन्दरी एवं युवती दासी-पुत्री है। उन्होंने उसके साथ परम ज्ञानी विदुर जी का विवाह कर दिया। उसके गर्भ से विदुर जी के समान ही गुणवान् अनेक पुत्र उत्पन्न हुए।

महादानी कर्ण

विवाह होने से पहिले ही कुन्ती के एक पुत्र हो गया था। जब उस पुत्र की उत्पत्ति हुई, तब कुन्ती लज्जा के कारण उसकी रक्षा न कर सकी और तत्काल ही उस बालक को एक बर्तन में रखकर जल में फेंक दिया। वह बर्तन एक सारथी

की स्त्री राधा को मिल गया। राधा ने उस बर्तन में से उस शिशु को निकालकर घर ले जाकर पाला-पोसा। उसने उसका नाम कर्ण रखा। कर्ण अपने को राधा का पुत्र ही मानता था, इसलिये उसे राधेय भी कहते थे। बड़ा होने पर कर्ण बड़ा बलवान् और तेजस्वी हुआ। अस्त्र-शस्त्र चलाने में उसके समान उस समय बहुत कम वीर थे। दान देने में वह अद्वितीय था।

एक वार इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों की सभा में श्रीकृष्णचन्द्र कर्ण की दानशीलता की प्रशंसा करने लगे। अर्जुन को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—हृषीकेश! धर्मराज की दानशीलता में कहाँ त्रुटि है जो उनकी उपस्थिति में आप कर्ण की प्रशंसा कर रहे हो?

इस तथ्य को तुम स्वयं समय पर समझ लोगे यह कहकर उस समय श्रीकृष्ण ने बात को टाल दिया।

कुछ समय पश्चात् अर्जुन को साथ लेकर श्यामसुन्दर ब्राह्मण के वेश में पाण्डवों के राजसदन में आये और बोले—राजन्! मैं अपने हाथ से बना भोजन करता हूँ। भोजन मैं केवल चन्दन की लकड़ी से बनाता हूँ और वह काष्ठ तनिक भी भीगा नहीं होना चाहिये।

उस समय खूब वर्षा हो रही थी। युधिष्ठिर ने राजभवन में पता लगा लिया, किन्तु सूखा चन्दन का काष्ठ कहीं मिला नहीं। सेवक नगर में गये, किन्तु संयोग ऐसा कि जिसके पास भी चन्दन मिला, सब भीगा हुआ मिला। धर्मराज को बड़ा दुःख हुआ। किन्तु उपाय कुछ भी न था।

उसी वेश में वहाँ से श्रीकृष्ण और अर्जुन सीधे कर्ण की राजधानी पहुँचे और वही बात कर्ण से कही। कर्ण के राजसदन में भी सूखा चन्दन नहीं था और नगर में भी नहीं मिला। लेकिन कर्ण ने सेवकों से नगर में चन्दन न मिलने की बात सुनते ही धनुष चढ़ाया। राजसदन के मूल्यवान् कलांकित द्वार चन्दन के थे। अनेक पलंग चन्दन के पाये के थे। कई दूसरे उपकरण चन्दन के बने थे। क्षणभर में बाणों से कर्ण ने उन सबको चीर कर एकत्र करवा दिया और बोला—भगवान्! आप भोजन बनाएँ।

वह आतिथ्य-प्रेम के भूखे गोपाल कैसे छोड़ देते। वहाँ से तृप्त होकर जब बाहर आ गये, तब अर्जुन से बोले—पार्थ! तुम्हारे राजसदन में भी द्वार आदि चन्दन के ही हैं। उन्हें देने में पाण्डव कृपण भी नहीं हैं। किन्तु दान-धर्म में जिसके प्राण बसते हैं, उसी को समय पर स्मरण आता कि पदार्थ कहां से कैसे लेकर दे दिया जाय।

आज दानशीलता का सूर्य अस्त हो रहा है। जिस दिन कर्ण युद्धभूमि में गिरे, सायंकाल, शिविर में लौटकर श्रीकृष्ण खिन्नमुख बैठ गये।

अच्युत! आप उदास हो, इतनी महानता कर्ण में क्या है? अर्जुन ने पूछा।

चलो! उस महाप्राण के अन्तिम दर्शन कर आएँ। तुम दूर से ही देखते रहना। श्रीकृष्ण उठे। उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया। रक्त से कीचड़ बनी, शवों से पटी, छिन्न-भिन्न अस्त्र-शस्त्रों से पूर्ण युद्धभूमि में रात्रिकाल में श्रृगालादि घूम रहे थे। ऐसी भूमि में मरणासन्न कर्ण पड़े थे।

महादानी कर्ण! पुकारा वृद्ध ब्राह्मण ने।

मैं यहां हूँ प्रभु! किसी प्रकार पीड़ा से कराहते कर्ण ने कहा।

तुम्हारा सुयश सुनकर बहुत अल्प द्रव्य की आशा से आया था। ब्राह्मण ने कहा।

आप मेरे घर पधारें! कर्ण और क्या कहते!

मुझे जाने दो! इधर-उधर भटकने की शक्ति मुझ में नहीं, ब्राह्मण रुष्ट हो गये।

मेरे दांतों में स्वर्ण लगा है। आप इन्हें तोड़कर ले लें। कर्ण ने सोचकर कहा।

छिः! ब्राह्मण अब यह क्रूर कर्म करेगा। ब्राह्मण और रुष्ट हुए।

किसी प्रकार कर्ण खिसके। उन्होंने पास पड़े एक शस्त्र पर मुख पटक दिया। शस्त्र से टूटे दांतों का स्वर्ण निकाला; किन्तु रक्त-सना स्वर्ण ब्राह्मण कैसे ले! धनुष भी चढ़ाने की शक्ति कर्ण में नहीं थी। मरणासन्न, अत्यन्त आहत कर्ण ने हाथ तथा घायल मुख से धनुष चढ़ा कर वारुण अस्त्र के द्वारा जल प्रकट कर स्वर्ण धोया और दान किया। श्रीकृष्ण प्रकट हो गये।

पाण्डु द्वारा दिग्विजय

माद्री से विवाह हो चुकने के कुछ समय पश्चात् राजा पाण्डु ने पृथ्वी के दिग्विजय का निश्चय किया। भीष्म आदि गुरुजनों और बड़े भाई धृतराष्ट्र आदि को प्रणाम करके आज्ञा प्राप्त की और सेना लेकर यात्रा आरम्भ कर दी। पाण्डु ने अनेक राजाओं को परास्त करके, अनेक देशों पर विजय का झण्डा फहराया। अनेक राजा पाण्डु से भिड़े और नष्ट हो गये। सबने पराजित होकर उन्हें पृथ्वी का सम्राट् स्वीकार किया। राजाओं ने उन्हें बहुत सा

अमूल्य धन-रत्न और गाय, घोड़े तथा रथ आदि भेंट दिये। महाराजा पाण्डु उनकी भेंट स्वीकार करके हस्तिनापुर लौट आये। पाण्डु को सकुशल लौटा देखकर भीष्म जी ने उन्हें छाती से लगा लिया और उनकी आंखों में आनन्द के आंसू छलक आये। पाण्डु ने सारा धन भीष्म जी और सत्यवती को भेंट किया। माता के आनन्द की सीमा न रही।

महाराज पाण्डु को वैराग्य

महाराजा पाण्डु के समय राज्य में बड़ी शान्ति थी। कोई बलवान् किसी निर्बल पर अत्याचार नहीं कर सकता था। प्रजा बहुत सुखी थी। दिग्विजय करने के पश्चात् पाण्डु दोनों रानियों के साथ वन में रहने लगे। उन्हें वन के दृश्य देखने और एकान्त में रहने से प्रेम था। हिमालय पर्वत की तराई में, अत्यन्त मनोहर वन में, पाण्डु ने अपना निवास स्थान बना लिया। उनके पीछे राज्य का काम धृतराष्ट्र की आज्ञा से होता रहा।

वन में रहते-रहते महाराजा पाण्डु का मन संसार से हटने लगा और वे एक प्रकार से विरक्त हो गये। रात-दिन भगवान् की भक्ति और धर्म-चर्चा में ही लगे रहते थे। वैराग्य उत्पन्न होने पर पहिले पाण्डु भी बहुत विलासी थे। इनका शरीर भोग-विलास के कारण बहुत निर्बल हो गया था। एकदिन वन में किसी मुनि ने इन्हें देखकर कहा कि यदि अब एक वार भी तुम कामवासना करोगे, तो तुम्हारा जीना कठिन हो जाएगा।

मुनि की बात सुनकर पाण्डु ने वन में तप करने का निश्चय किया। एक दिन उन्होंने अपने नौकरों और सब साथियों को बुलाकर कहा—तुम सब लोग यहां का सब सामान लेकर हस्तिनापुर लौट जाओ। वहां जाकर पितामह भीष्म और धृतराष्ट्र और गांधारी से कहना कि पाण्डु वन में चले गए हैं। अब वे वापिस नहीं आवेंगे, उनके लिये कुछ चिन्ता न करें। महाराजा पाण्डु की बात सुनकर सब साथी बहुत दुःखी हुये और रोने लगे। रानियां पाण्डु के पैरों में लिपट कर रोने लगीं और बोली—महाराज! हम तो आपके चरणों की दासी हैं। हमारा क्या अपराध हुआ है, जो हमें हस्तिनापुर भेजते हैं। यदि आप हमें अपने साथ न ले चलेंगे, तो हम यहीं आपका नाम लेकर प्राण त्याग देंगी।

रानियों की दृढ़ भक्ति देखकर पाण्डु ने उन्हें साथ ले लिया और नौकर-चाकर तथा साथी ब्राह्मण आदि सब हस्तिनापुर चले गये। उन्होंने हस्तिनापुर पहुँचकर

पाण्डु का सब समाचार धृतराष्ट्र से कह सुनाया। धृतराष्ट्र यह सुनकर बहुत दुःखी हुए।

युधिष्ठिर आदि का जन्म

पाण्डु अपनी पत्नियों के साथ एक-से-दूसरे पर्वत पर घूमते रहे। वे केवल कन्द-मूल-फल खाकर रह जाते। ऊँची-नीची भूमि पर सो लेते। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनका ध्यान रखते थे। अन्त में वे शतश्रृंग पर्वत पर तपस्या करने लगे। वहां ऋषि-मुनि और महात्मा सभी उनसे बड़ा प्रेम करते थे। महात्मा पाण्डु भी सबकी सेवा करते, मन और इन्द्रियों को वश में रखते तथा कभी घमण्ड नहीं करते थे। कोई ऋषि पाण्डु को अपना भाई मानते, कोई पुत्र और कोई मित्र जानकर उनकी रक्षा का ध्यान रखते थे। इसी प्रकार पाण्डु की तपस्या होने लगी।

एक दिन रानियों ने महात्मा पाण्डु से प्रार्थना की कि महाराज! सन्तान न होने के कारण आपका नाम संसार से मिट जायेगा। रानियों की इच्छा समझकर पाण्डु ने उन्हें सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दे दी। पाण्डु बहुत निर्बल थे और उनका मन भोग-विलास से दूर हट चुका था, इस लिए रानियों ने पाण्डु से सन्तान उत्पन्न नहीं की, किन्तु नियोग द्वारा ही पुत्र उत्पन्न किये।

कुन्ती ने धर्मराज के संयोग से एक पुत्र उत्पन्न किया, इसका नाम युधिष्ठिर रखा गया। इसको धर्मपुत्र भी कहते थे। यह बड़े होने पर बहुत धर्मात्मा और सत्यवादी हुए। दूसरा पुत्र पवन के संयोग से उत्पन्न किया। इसका नाम भीमसेन रखा गया, इसको पवन-पुत्र भी कहते थे। बड़े होने पर यह सबसे अधिक बलवान् हुए। तीसरा पुत्र अर्जुन हुआ, यह इन्द्र के संयोग से उत्पन्न हुआ था, इसलिये इसे इन्द्र का पुत्र भी कहा जाता था। यह बड़ा तेजस्वी और अनुपम धनुर्धारी हुए।

कुन्ती के पुत्रों को देखकर माद्री ने भी सन्तान उत्पन्न करना चाहा। माद्री ने अश्विनी कुमारों के संयोग से नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया। ये दोनों जुड़वां उत्पन्न हुए। इन्हें अश्विनी कुमारों का पुत्र कहा जाता था। ये दोनों अनुपम रूपवान् थे।

सब पुत्रों का जन्म एक-एक वर्ष बाद हुआ। जिस दिन भीमसेन का जन्म हुआ था, उसी दिन धृतराष्ट्र के सबसे बड़े पुत्र दुर्योधन का भी जन्म हुआ था। महात्मा पाण्डु पांचों बालकों की बाल-क्रीड़ा देखकर बहुत

आनन्दित होते थे।

पाण्डु की मृत्यु

एक दिन महात्मा पाण्डु अपनी दोनों रानियों और पांचों पुत्रों के साथ वन में घूम रहे थे। कुन्ती पांचों बालकों को लेकर पीछे-पीछे आ रही थी और पाण्डु माद्री के साथ आगे-आगे चल रहे थे। पाण्डु माद्री के साथ अधिक प्रेम करते थे। वसन्त ऋतु थी। धीमी-धीमी, शीतल और सुगन्ध वायु चल रही थी, प्रकृति की छटा अनुपम थी। माद्री के रूप-सौन्दर्य को देखकर पाण्डु के मन में विकार उत्पन्न हो गया। वे अपने मन को नहीं रोक सके और कामवासना में फँस गये। पाण्डु बहुत निर्बल थे, उसी समय उनका देहान्त हो गया। इस भयंकर घटना को देखकर माद्री चिल्ला उठी। चिल्लाने की आवाज सुनकर कुन्ती एकदम दौड़कर आई। महात्मा पाण्डु की मृत्यु देखकर उसे भी अपार दुःख हुआ। माद्री पाण्डु के मृत शरीर के साथ सती हो गई। कुन्ती पांचों बालकों को पालन-पोषण करने के लिये जीवित रह गई।

पाण्डु के वियोग का दुःख कुन्ती से नहीं सहा गया। वह विलाप करती रही। ऋषि-मुनियों को उस पर बड़ी दया आई। उन्होंने कुन्ती और पांचों पुत्रों को हस्तिनापुर पहुँचा दिया। हस्तिनापुर पाण्डु का विधिपूर्वक क्रियाकर्म किया गया।

दुर्योधन आदि का जन्म

धृतराष्ट्र बड़े बलवान् थे। उन्होंने गांधारी के गर्भ से 99 पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की। जिस समय गांधारी गर्भवती थी और धृतराष्ट्र की सेवा करने में असमर्थ थी, उस समय एक वैश्य कन्या धृतराष्ट्र की सेवा में रहती थी। धृतराष्ट्र ने उससे एक पुत्र उत्पन्न किया उसका नाम युयुत्सु रखा गया। इस प्रकार धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र और एक कन्या हुई। दुर्योधन सब से बड़ा था और उससे छोटा था युयुत्सु। कन्या का नाम दुश्शला था। ये सभी बड़े शूरवीर, युद्धकुशल तथा शास्त्रों के विद्वान् थे। समय आने पर धृतराष्ट्र ने योग्य कन्याओं के साथ इन सबका विवाह कर दिया और दुश्शला का विवाह राजा जयद्रथ के साथ हुआ।

सत्यवती आदि का देहत्याग

पाण्डु की मृत्यु के बाद, सत्यवती पाण्डु को याद करके दुःख और शोक से पागल-सी रहने लगी। अपनी माता को व्याकुल देखकर व्यास जी ने उनसे

कहा—माता जी! अब सुख का समय बीत गया। बड़े बुरे दिन आ रहे हैं। दिन-दिन पाप की बढ़ती होगी। धर्म, कर्म और सदाचार लुप्त हो रहे हैं। तुम योगिनी बन कर योग करो और अब यहाँ से वन में चली जाओ। अपनी आँखों से वंश का नाश देखना उचित नहीं। सत्यवती ने भीष्म जी से सलाह ली और अम्बिका और अम्बालिका को साथ लेकर वन में चली गई। वहीं वन में घोर तपस्या करते हुए तीनों ने अपने देह का त्याग किया।

कौरव-पाण्डवों का बालपन

कुरु राजा के प्रताप के कारण धृतराष्ट्र और पाण्डु के वंश का नाम कुरुवंश प्रसिद्ध था। इसलिये इनकी सन्तान कौरव कहलाई। धृतराष्ट्र के पुत्र भी कौरव थे और पाण्डु के पुत्र भी कौरव थे। किन्तु फिर भी पाण्डु के पुत्रों को पाण्डव कहा जाता था और धृतराष्ट्र के पुत्रों को ही कौरव कहा जाता था।

सब बच्चे धीरे-धीरे बड़े होने लगे। आपस में खेलकूद कर समय बिताने लगे। पाण्डव खुशी-खुशी दुर्योधन आदि के साथ खेलते और उनसे बढ़-चढ़कर ही रहते। दौड़ने में, निशाना लगाने में, खाने में, धूल उड़ाने में भीमसेन धृतराष्ट्र के सभी बच्चों को हरा देते थे। भीमसेन चुपके से छिपकर उनका सिर पकड़ लेते और एक-दूसरे से टक्कर मारते। वे दस-दस बालकों को बगल में दबाकर पानी में डुबकी लगाते और उनकी दुर्दशा करके छोड़ते। जब दुर्योधन आदि बालक किसी वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ते, तो ये अपने पैर से वृक्ष हिला देते, बच्चे भी फलों के साथ नीचे टपक पड़ते। भीमसेन कुश्ती में, दौड़ने में या किसी अन्य युद्ध में भी सबसे अधिक थे। भीमसेन के मन में कोई वैर-विरोध नहीं था। वे केवल होड़ के कारण ऐसा करते थे। किन्तु दुर्योधन के मन में भीमसेन के प्रति विरोध उत्पन्न हो गया था। वह रात-दिन भीमसेन में दोष ही देखता था और उससे जला करता था। दुर्योधन सोचने लगा कि भीमसेन बड़ा होकर कहीं हम सबको मारकर सारा राज्य अपने आप न हड़प ले। इसलिए वह भीमसेन को अभी से मार देने की ताक में रहने लगा।

एक बार दुर्योधन ने जल में खेलने की व्यवस्था की। गंगा के तट पर प्रमाणकोटि स्थान पर तम्बू और खेमे लगवाये गये। वहाँ सब प्रकार का भोजन पहुँचा दिया गया। दुर्योधन ने भीमसेन के लिये विष मिली हुई मिठाई तैयार करवाई थी। वहाँ जाकर कौरव और पाण्डव सब जल में खूब देर तक प्रसन्नता के साथ खेलते रहे। जल में खेलते-खेलते जब सब थक गये, तब तम्बू और खेमों

में आकर इच्छापूर्वक भरपेट मिठाई खाने लगे। दुर्योधन ने भीमसेन को वही विष मिली मिठाई खिला दी, भीमसेन को कुछ पता न चला और वह खुशी-खुशी सब मिठाई खा गये। खेलने और खाने के पश्चात् सब भाई उन्हीं खेमों में सो गए। भीमसेन के अंग-अंग में विष फैल गया था, इसलिये वह बेहोश हो गये।

दुर्योधन के मन में तो पाप था, इसलिये उसे नींद कहाँ! सब सो गये किन्तु वह जागता रहा। दुर्योधन ने मौका देखा, वह धीरे से उठा और भीमसेन को लताओं की रस्सी से बाँधकर नदी में डाल आया।

जब उनकी नींद खुली तो सब अपनी-अपनी सवारियों पर चढ़कर नगर की ओर चल दिये। युधिष्ठिर ने भीमसेन को बहुत ढूंढ़ा पर वह नहीं मिले। युधिष्ठिर ने सोचा कि वह पहले ही चला गया होगा। घर आते ही युधिष्ठिर ने माता कुन्ती से पूछा—भीम कहाँ है? युधिष्ठिर की बात सुनकर कुन्ती रोने लगी और बोली—तुम शीघ्र उसका पता लगाओ। कुन्ती को दुर्योधन पर सन्देह था। वह समझती थी कि दुर्योधन ही भीमसेन से जला करता है।

भीमसेन पानी में बहते-बहते बहुत दूर निकल गए। जल की ठंडक से उनका विष कुछ कम हो गया। वे जल में बहते-बहते से तट पर लग गये। भीमसेन चलफिर नहीं सकते थे। उसी समय वहाँ नाग जाति का एक सरदार किसी कार्य से आया। उसने भीमसेन को वहाँ देखा, वह उन्हें अपने घर ले गया और विष उतारने की दवा करने लगा। वह नागराज से विदा माँगकर, मार्ग में फलफूल खाते हुए, अपने घर आ गये।

भीमसेन को देखते ही कुन्ती और उसके सब पुत्रों को परम हर्ष हुआ। भीमसेन के वियोग का दुःख एकदम दूर हो गया। माता कुन्ती और चारों भाइयों ने भीमसेन को बहुत देर तक अपने शरीर से हर्ष के मारे लिपटाये रखा। इसके बाद भीम ने दुर्योधन की दुष्टता की सारी कथा कह सुनाई। कथा सुनकर युधिष्ठिर बोले—भाई चुप रहो! जो हुआ, सो हुआ! दुर्योधन का नाम लेने से वह हमसे और भी द्वेष करने लगेगा। अब हमें स्वयं ही सावधान होकर रहना चाहिए। कुछ देर के बाद विदुर जी भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भी पाण्डवों को यही सलाह दी। विदुर पाण्डवों को सदा बहुत अच्छी शिक्षा दिया करते थे। पाण्डव भी विदुर की सम्मति के विरुद्ध कभी कोई कार्य नहीं करते थे।

द्रोणाचार्य की कथा

महात्मा भरद्वाज के पुत्र का नाम द्रोण था। भरद्वाज वेदों के उच्चकोटि के

पण्डित थे। उन्होंने द्रोण को भी वेदों और शास्त्रों की शिक्षा दे दी। राजनीति की शिक्षा देकर उनको सांसारिक व्यवहार में भी कुशल बना दिया। भरद्वाज ऋषि के एक राजा मित्र थे। उस राजा के एक पुत्र था। द्रुपद भी भरद्वाज के आश्रम में आकर पढ़ता था और द्रोण के साथ खेला करता था। वहाँ द्रुपद और द्रोण में बड़ी मित्रता हो गई। भरद्वाज के बाद महर्षि अग्निवेष के पास आकर उन्होंने धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा समाप्त होने पर द्रोण से विदा होते समय द्रुपद ने कहा—हे द्रोण! तुम हमारे मित्र हो। जब मैं राजा बनूँगा, तब अपना आधा राज्य तुम्हें दे दूँगा।

समय आने पर द्रोणाचार्य का विवाह कृपाचार्य की बहिन कृपि के साथ हो गया। कृपी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम **अश्वत्थामा** रखा गया। अश्वत्थामा बड़ा बलवान् और होनहार बालक था। अश्वत्थामा के जन्म से द्रोण को अत्यन्त हर्ष हुआ।

एक दिन द्रोण अपने मित्र द्रुपद के पास गए। उस समय द्रुपद पंचाल देश के राजा थे। द्रोण ने द्रुपद के पास जाकर कहा—राजन्! मैं आपका प्रिय मित्र द्रोण हूँ। आपने मुझे पहिचान तो लिया होगा? द्रुपद द्रोण की बात से चिड़ गए। वे भौहें टेढ़ी और आँखें लाल करके बोले—ब्राह्मण! मुझे अपना मित्र बतलाते समय तुम्हें कुछ हिचकिचाहट नहीं मालूम होती? राजाओं की गरीबों से क्या मित्रता? द्रुपद की बात सुनकर द्रोण क्रोध से काँप उठे। उन्होंने मन ही मन कुछ निश्चय किया और कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर में आ गए। वहाँ आकर, उन्होंने कुछ दिनों तक कृपाचार्य के घर गुप्त रूप से निवास किया।

एक दिन युधिष्ठिर आदि सभी राजकुमार नगर से बाहिर जाकर मैदान में गेंद से खेल रहे थे। गेंद अकस्मात् कुँए में गिर पड़ी। राजकुमारों ने गेंद को निकालने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु कोई उसे निकाल न सका। इतने में ही उन्होंने पास में ही बैठे हुए एक ब्राह्मण को देखा उनका शरीर दुर्बल और रंग साँवला था। वह भी इन राजकुमारों को गेंद निकालते हुए देख रहे थे। वह इन राजकुमारों से बोले—तुम लोग कुँए में से एक गेंद भी नहीं निकाल सकते! देखो! मैं तुम लोगों की गेंद अभी निकाल देता हूँ। देखो ये कुछ सींकें हैं। मैं एक सींक से गेंद को छेद देता हूँ, और फिर दूसरी सींकों से एक-दूसरी को छेद कर तुम्हारी गेंद खींच लेता हूँ। उस ब्राह्मण ने वैसा ही किया। राजकुमारों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे बोले-हमने तो ऐसी अस्त्रविद्या और कहीं नहीं देखी! आप कृपा करके अपना परिचय दीजिए और बताइए कि हम लोग आपकी क्या सेवा

करें? ब्राह्मण ने कहा—तुम लोग यह सब बात भीष्म जी से कहना, वे मेरे रूप और गुण से मुझे पहिचान जायेंगे।

राजकुमारों ने नगर में लौटकर सारी बातें भीष्म पितामह से कहीं। सुनते ही वह प्रसन्न हुए और समझ गए कि हो-न-हो द्रोणाचार्य आ गए हैं। उन्होंने निश्चय किया कि अब इन राजकुमारों को द्रोणाचार्य से ही शिक्षा दिलानी चाहिए। वे तत्काल स्वयं जाकर द्रोणाचार्य को लिवा लाए और उनका खूब आदर-सत्कार करके उनके आने का कारण पूछा।

द्रोणाचार्य ने कहा एक दिन की बात है, ऋषियों के बालक दूध पी रहे थे। मेरा पुत्र अश्वत्थामा उन्हें देखकर दूध पीने के लिए रोने लगा। यह देखकर मुझे दुःख हुआ। बहुत घुमने पर भी मुझे कोई दूध देने वाली गाय न मिली। जब में लौट कर आया तो देखा कि छोटे-छोटे बच्चे आटे के पानी से अश्वत्थामा को ललचा रहे हैं और वह उसे ही पीकर प्रसन्न हो रहा है कि मैंने भी दूध पी लिया। अपने बच्चे की यह दशा देखकर मुझसे न रहा गया।

जब मैंने सुना कि मेरा मित्र द्रुपद राजा हो गया है, तब मैं अपनी पत्नी और बच्चे के साथ उसकी राजधानी के लिए चल पड़ा। मुझे उसकी प्रतिज्ञा पर पूरा विश्वास था। परन्तु जब मैं उससे मिला, तब उसने एक अपरिचित के समान कहा—'ब्राह्मण देवता! अभी तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। तुमने एकदम बेधड़क कह दिया कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ। उस समय हम-तुम दोनों समान थे। इसलिए मित्रता थी। अब मैं धनी हूँ तुम निर्धन हो। हम दोनों की मित्रता कैसी! तुम कहते हो कि मैंने राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी, उसका तो मुझे कुछ भी स्मरण नहीं। तुम चाहो तो एक दिन अच्छी तरह इच्छानुसार भोजन कर लो।

वहाँ से चलते समय मैंने एक प्रतिज्ञा की है। द्रुपद ने मेरा तो तिरस्कार किया है, उससे मेरा कलेजा जल रहा है। मैं अपनी प्रतिज्ञा शीघ्र ही पूर्ण करूँगा। मैं गुणवान् शिष्यों को शिक्षा देने के उद्देश्य से यहाँ आया हूँ।

भीष्म पितामह ने कहा—अब आप यहीं रहकर राजकुमारों को धनुर्वेद और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दीजिए। कौरवों का धन, वैभव और राज्य सब आपका ही है। हम सब आपके आज्ञाकारी सेवक हैं।

राजकुमारों की शिक्षा

जब कौरव और पाण्डव कुछ बड़े हुए, तब भीष्म जी को उन्हें धर्म, राजनीति और युद्ध विद्या की शिक्षा देने की बड़ी चिन्ता हुई। वे कृपाचार्य

नामक एक ब्राह्मण से मिले। वे युद्ध-विद्या के बड़े पण्डित थे। युद्ध विद्या सिखाने के लिऐ इन्होंने एक पाठशाला खोल रखी थी। अनेक देशों के राजकुमार यहाँ युद्ध-विद्या सीखते थे। भीष्म जी ने कौरवों और पाण्डवों को भी इसी पाठशाला में विद्या सीखने के लिए कृपाचार्य के सुपुर्द कर दिया।

जब भीष्म जी की द्रोणाचार्य से भेंट हुई, तब उन्होंने समझा कि इन राजकुमारों को अस्त्र-विद्या सिखाने के लिए द्रोणाचार्य ही अधिक उपयुक्त हैं। इसलिए जब वे राजकुमारों को लेकर द्रोणाचार्य के पास आए और बोले—आप इन राजकुमारों को अपना शिष्य बनाइए। द्रोणाचार्य ने यथाविधि राजकुमारों को अपना शिष्य बना लिया। वे उनसे शस्त्र-विद्या सीखने लगे। इनमें अर्जुन सबसे बढ़कर बुद्धिमान् थे। वे बड़े प्रेम से गुरु की सेवा किया करते थे। गुरु भी अर्जुन से बहुत प्रसन्न थे। वे अर्जुन को सब अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा देने लगे।

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को रथ पर, घोड़े पर और हाथी पर युद्ध करने की रीति बतलाई। गदा, तलवार और शक्ति चलाने की शिक्षा दी। विशेष अस्त्रों के फैंकने से एक ही साथ बहुत वे वीरों से युद्ध करने तथा एक ही समय अनेक बाण चलाने की भी शिक्षा दी।

एकलव्य की गुरु-भक्ति

द्रोणाचार्य की शिक्षा की बात देश-देशान्तर में फैल गई। दूर-दूर के राजा और राजुकुमार शिक्षा लेने के लिए आने लगे। एक दिन निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य भी शस्त्र-विद्या सीखने के लिये उनके पास आया। परन्तु द्रोणाचार्य ने राजकुमारों के साथ उसे रखना उचित न समझकर उसे शिक्षा देना अस्वीकार कर दिया। वह लौट गया। वन में जाकर उसने द्रोणाचार्य की एक मिट्टी की मूर्ति बनाई और उसी को गुरु मानकर श्रद्धा और प्रेम से प्रतिदिन नियमपूर्वक अस्त्र-शस्त्र का अभ्यास करने लगा। वह अत्यन्त निपुण हो गया।

एक दिन सब राजकुमार शिकार खेलने के लिये वन में गए। उनके साथ एक कुत्ता भी था। वह कुत्ता घूमता-फिरता वहाँ पहुँच गया, जहाँ एकलव्य बाणों का अभ्यास कर रहा था। एकलव्य का शरीर मैला-कुचैला था। वह काला मृग चर्म पहने था और उसके सिर पर जटायें थीं। कुत्ता उसे देखकर भूंकने लगा। एकलव्य ने क्रोध में भरकर सात बाण मारे, जिससे उस कुत्ते का

मुँह भर गया। परन्तु उसे चोट कहीं नहीं लगी। कुत्ता बाण-भरे मुँह से पाण्डवों के पास आया। यह आवर्श्यजनक दृश्य देखकर पाण्डव कुत्ते के मुँह में बाण भरने वाले को ढूंढ़ने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उन्हें एक मनुष्य मिला, वह लगातार बाण चलाने का अभ्यास कर था। पूछने पर उसने बतलाया—मेरा नाम एकलव्य है। मैं हिरण्यधनु का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ। मैं यहाँ धनुर्विद्या का अभ्यास करता हूँ।

वहाँ से लौटकर राजकुमारों ने द्रोणाचार्य से सब समाचार कह सुनाया। अर्जुन ने कहा—'गुरुदेव! आपने मुझे हृदय से लगाकर बड़े प्रेम से यह बात कही थी कि मेरा कोई भी शिष्य तुमसे बढ़कर न होगा। परन्तु आपका यह एकलव्य शिष्य तो मुझसे भी बढ़कर है। अर्जुन की बात सुनकर द्रोणाचार्य ने कुछ देर तक विचार किया और फिर उन्हें साथ लेकर उसी वन में गए।

द्रोणाचार्य को देखते ही एकलव्य प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहने लगा—हे आचार्य! मैं आपका शिष्य एकलव्य हूँ। द्रोण ने कहा मेरा शिष्य है तो दक्षिणा दे। एकलव्य ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया आप मेरे गुरु हैं, कोई ऐसी वस्तु नहीं जो गुरु को न दी जा सके। द्रोण ने आज्ञा दी 'तुम अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काट दो। गुरुभक्त एकलव्य ने तत्काल अंगूठा काट कर द्रोणाचार्य को दे दिया। अब वह अंगुलियां से बाण चलाने लगा। पर पहिले से कुछ कम। अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए और गुरु द्रोण को प्रेमभरी दृष्टि से देखने लगे। गुरुभक्ति के कारण ही एकलव्य अस्त्र-विद्या में इतना निपुण हो गया और इसी कारण आज तक उसका नाम अमर है।

राजकुमारों की परीक्षा

एक वार द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने लकड़ी की एक नकली चिड़िया वनवाकर उसे वृक्ष की एक टहनी पर बिठा दिया। तदनन्तर राजकुमारों से कहा 'धनुष पर बाण चढा कर तैयार हो जाओ। तुम्हें उस चिड़िया की आँख उड़ानी है। गुरु की आज्ञा से सब तैयार हो गए। उन्होंने पहिले युधिष्ठिर से पूछा 'युधिष्ठिर! क्या तुम इस वृक्ष पर बैठी चिड़िया को देख रहे हो?' युधिष्ठिर ने कहा—'जी, मै देख रहा हूँ। द्रोणाचार्य ने कुछ क्रोधित होकर कहा—'हट जाओ, तुम यह निशाना नहीं मार सकते।

इसके बाद उन्होंने दुर्योधन यादि राजकुमारों को भी एक-एक करके खड़ा किया और उनमें भी यही प्रश्न किया। उन सबने वही उतर दिया, जो युधिष्ठिर

ने दिया था। आचार्य ने सबको धमका कर वहाँ से हटा दिया।

अन्त में अर्जुन को बुला कर उन्होंने पूछा—'क्या तुम इस वृक्ष को, चिड़िया को और मुझे देख रहे हो? अर्जुन ने कहा—मैं चिड़िया के अतिरिक्त और कुछ नहीं देख रहा हूँ। द्रोणाचार्य ने फिर पूछा—'भला बताओ तो, चिड़िया की आकृति कैसी है?' अर्जुन बोले—'भगवन्! मै तो केवल उसकी आँख देख रहा हूँ। आकृति का पता नहीं। द्रोणाचार्य प्रसन्न हो गए। वे बोले—बेटा! चलाओ बाण, अर्जुन ने तत्काल बाण से चिड़िया की आँख साफ कर दी। गुरु द्रोण ने अर्जुन को हृदय से चिपटा लिया। वे मन-ही-मन विचारने लगे—अब द्रुपद से अपने अपमान का बदला लूँगा।

राजकुमारों द्वारा शिक्षा-प्रदर्शन

जब द्रोणाचार्य राजकुमारों को युद्ध विद्या की सब शिक्षा दे चुके तब एक दिन भीष्म जी विदुर जी के पास जाकर बोले—राजकुमार अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण हो गए हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो वे अपनी शिक्षा का परिचय दें। भीष्म जी ने इस बात की सूचना धृतराष्ट्र को दे दी। धृतराष्ट्र ने विदुर जी के द्वारा, राजकुमारों की शिक्षा के प्रदर्शन का सब प्रबन्ध करवा दिया। बीच में अखाड़े और मैदान के लिए जगह छोड़कर चारों ओर लम्बे चबूतरे बना दिए गए और ऊँचे-ऊँचे मचान बाँधकर उन रानियों के बैठने का प्रबन्ध कर दिया गया। कुछ समय के पश्चात् ही तमाशा देखने के लिए सब लोग आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गए।

आचार्य की आज्ञा से अस्त्र-शस्त्र चलाने में सब अपनी योग्यता दिखाने लगे। दुर्योधन और भीम गदा लेकर अखाड़े में उतरे। वे इस प्रकार लड़ने लगे जैसे दो मतवाले हाथी लड़ते हों। लड़ते-लड़ते जब दोनों में क्रोध उत्पन्न हो गया, तब गुरुजी ने उनकी लड़ाई बन्द कर दी।

सब राजकुमारों के पश्चात् अर्जुन अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर अखाड़े में आए। अर्जुन को देखते ही दर्शकों के आनन्द का ठिकाना न रहा। अर्जुन ने बाण चलाकर कभी बिल्कुल अन्धेरा कर दिया, कभी प्रकाश कर दिया, कभी जल बरसा दिया, कभी अग्नि की वर्षा की और कभी बड़े वेग से वायु चला दी। अर्जुन की विद्या देखकर दर्शकगण अचम्भा करने लगे। गुरु द्रोण मन-ही-मन प्रसन्न होने लगे। भीष्म जी, विदुर जी और कृपाचार्य आदि सबने उसकी प्रशंसा की।

कर्ण को अंगदेश का राजा बनाना

अर्जुन की निपुणता देखकर, कर्ण अत्यन्त अभिमान के साथ द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को प्रणाम करके खड़ा हो गया और बोला—हे अर्जुन! तुमको अपनी योग्यता पर बड़ा अभिमान हो गया है। तुम समझते होगे कि तुम्हारे जैसा और कोई नहीं है। यह तुम्हारी भूल है। मै तुमसे भी अधिक चतुरता दिखला सकता हूँ।

दुर्योधन का स्वभाव बड़ा दुष्ट था। वह पाण्डवों का वैभव देखकर जलता तो था ही, कर्ण द्वारा अर्जुन का अपमान देखकर फूला न समाया। कर्ण और अर्जुन दोनों की क्रोध भरी बातें होने लगीं। अन्त में दोनों वीर लड़ने के लिए तैयार हो गए। यह देखकर परम चतुर कृपाचार्य ने एक बात कही—हे कर्ण! अर्जुन तो कुरुवश का राजकुमार है, तुम भी अपने वंश और माता-पिता का नाम बताओ। क्योंकि राजकुमार छोटे कुल में उत्पन्न हुए पुरुष से युद्ध करने में अपना अपमान समझते हैं।

कृपाचार्य की बात सुनकर कर्ण का सिर लज्जा से नीचे झुक गया। अपने मित्र को लज्जित हुआ देखकर दुयोधन उठ हुए और कहने लगे—यदि अर्जुन राजा ही से लड़ने में अपना मान सगझते हैं तो मैं अभी कर्ण को अंगदेश का राजा बना देता हूँ। यह कहकर दुर्योधन ने तत्काल पुरोहित को बुलाकर कर्ण को अंगदेश के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया।

इससे कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—राजन्! आपने मेरा जो आदर किया है, उसके बदले मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सदा आपकी सम्मति के अनुसार कार्य करूँगा।

दुर्योधन और कर्ण पाण्डवों से क्रुद्ध होकर अखाड़े से बाहिर चले गए। उस समय सूर्य भी अस्त होने वाला था। दुर्योधन के अनुचित व्यवहार से गुरुजनों का मन भी कुछ खिन्न हो गया। फिर सब उठकर अपने-अपने घर चले गए।

गुरु-दक्षिणा

जब कौरव और पाण्डव अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके, तब एक दिन वे गुरु द्रोण के पास आए और हाथ जोड़कर गुरु-दक्षिणा माँगने के लिए प्रार्थना करने लगे। द्रोणाचार्य ने कहा—राजा द्रुपद को पकड़ कर हमारे पास लाओ। गुरु की आज्ञा पाते ही राजकुमारों ने पांचाल देश पर चढ़ाई कर दी! द्रुपद भी दल-बल के साथ मैदान में आ डटे। दोनों दलों में घमासान लड़ाई हुई। द्रुपद

बड़े बलवान थे। उनकी मार से कौरव मैदान छोड़कर भागने लगे। किन्तु भीम और अर्जुन ने बहुत अधिक वीरता दिखाई। अर्जुन अपने रथ से कूदकर द्रुपद के रथ पर जा चढ़े और द्रुपद को बाँध कर रथ समेत गुरु द्रोण के पास ले आए। द्रोणाचार्य पाण्डवों से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद दिया कि—तुम्हारा कल्याण हो। तुम रण में सदा विजय प्राप्त करो।

इसके बाद गुरु द्रोण हँस कर राजा द्रुपद से बोले—हे द्रुपद! तुम अपने प्राणों का भय मत करो। तुमने उस दिन कहा था कि राजा के मित्र राजा ही हो सकते हैं। इस समय तो पांचाल देश के राजा हम हैं। बोलो, मित्रता करोगे या नहीं? द्रुपद का सिर लज्जा से नीचे झुक गया।

इसके पश्चात् आचार्य द्रोण ने कहा—अच्छा, मैं आधा राज्य तुमको देता हूँ और आधे का स्वामी मैं रहूँगा। अब हम और तुम समान हो गए। इसलिए अब तुम हमसे मित्रता करो।

यह कह कर द्रोणाचार्य ने द्रुपद का बन्धन तुड़वा दिया और उसे गले से लगाया। द्रुपद ने भी गुरु के चरणों में सिर रखकर अपने अपराध की क्षमा माँगी और आधा राज्य पाकर अपने नगर को लौट गए। परन्तु उनके मन से द्रोण द्वारा अपमानित होने का दुःख दूर नहीं हुआ और वे द्रोण से सदा मन-ही-मन द्वेष रखने लगे।

लाक्षागृह का जलाना

सब राजकुमारों में, युधिष्ठिर सबसे बड़े थे। इसलिये धृतराष्ट्र ने इनको युवराज बना दिया। युधिष्ठिर धर्मात्मा थे, वे असत्य-भाषण को बुरा समझते थे। दुर्योधन इनसे सदा जलता रहता था। शकुनि, कर्ण, दुःशासन और दुर्योधन ये चारों बड़े दुष्ट थे। इन्होंने सोचा कि हम पाण्डवों से लड़कर तो जीतेंगे नहीं, इनको किसी घर में बन्द करके जला डालना चाहिये।

प्रजा युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहती है। यह बात सुनकर दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से कहा कि प्रजा में आपके विरुद्ध षड़यन्त्र रचा जा रहा है। वह आपको गद्दी से उतार कर युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहती है। यदि वह राजा बन गया तो राज्य आपके हाथ से तो जाएगा ही, हमारी भी दुर्गति हो जायेगी।

धृतराष्ट्र ने कहा कि पुत्र! युधिष्ठिर राज्य के अधिकारी हैं। प्रजा यदि उन्हें राजा बनाना चाहती है, तो इसमें आपत्ति क्या है? यदि पाण्डवों को निकाल दूंगा तो भीष्म, विदुर, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य ये सब हमारे विरुद्ध हो जायेंगे।

दुर्योधन ने कहा—भीष्म पितामह दोनों को एक समान समझते हैं, इसलिए वे किसी का अनिष्ट न चाहेंगे। विदुर हमारे धन से सुख भोग रहे हैं, इसलिए वे हमारी विरुद्ध नहीं बोलेंगे। द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा हमारे पक्ष में हैं, इसलिए द्रोण भी पाण्डवों का पक्ष नहीं लेंगे। कृपाचार्य भी द्रोण के विरुद्ध नहीं जायेंगे। इसलिए आप निर्भय होकर पाण्डवों को और उनकी माता कुन्ती को यहाँ से दूर कीजिए।

धृतराष्ट्र समझते थे कि यदि दुर्योधन की बात नहीं मानूंगा तो वह मेरा भी अपमान करेगा। इसलिए उन्होंने पाण्डवों को बुलाकर वारणावत नगर में कुछ दिन रहने की आज्ञा दे दी।

युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई धृतराष्ट्र को पिता के समान मानते थे। इसलिए वे गुरुओं से आज्ञा लेकर माता के साथ वारणावत को रवाना हो गए। उस समय वारणावत में एक बहुत बड़ा मेला होने वाला था। पाण्डवों की उसे देखने की इच्छा भी थी। दुर्योधन ने पाण्डवों को धोखा देने का बहुत अच्छा अवसर देखा। उसने पुरोचन नामक एक उत्तम शिल्पकार को पहले ही मेले में भेज दिया और उसे आज्ञा दी कि वह पाण्डवों के रहने के लिए एक सुन्दर महल लाख और गन्धक इत्यादि शीघ्र जलने वाले पदार्थों से बना दे। ऐसा करने में उसका अभिप्राय यह था कि पाण्डवों के वहाँ रहते हुए उस पर आग लगा दी जाए।

विदुर जी को दुर्योधन के कपट की बात मालूम थी। उन्होंने गुप्त रीति से युधिष्ठिर को सब हाल समझा दिया और उस महल में एक सुरंग भी बनवादी, जो जंगल में निकलती थी।

एक रात में जब पाण्डव सोए हुए थे तब उस महल में आग लगी। इस घटना को देख पाँचों भाई अपनी माता कुन्ती को लेकर सुरंग के रास्ते से जंगल में निकल गए।

हिडिम्ब राक्षस का वध

पाण्डव अग्नि से बचकर सुरंग के रास्ते से वन में बहुत दूर निकल गए। चलते-चलते वे सब थक गये थे, इसलिये एक वृक्ष के नीचे सो गये। अकेले भीम सबकी रक्षा के लिये जागते रहे। वहाँ हिडिम्ब नामक एक राक्षस रहा करता था। वह बड़ा बलवान् था। वह मनुष्यों को खाया करता था। पाण्डवों को देखकर उन्हें भी खाने के लिये वह इनके पास आया। भीम ने उससे युद्ध करके उसे मार डाला। उसकी बहिन का नाम हिडिम्बा था। वह बहुत बलवान् और सुन्दर

थी। वह भी वहां रहती थी। भीम ने युधिष्ठिर और माता कुन्ती की आज्ञा से, उसके साथ विवाह कर लिया। उससे घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह भी बहुत अधिक बलवान् था।

वकासुर का वध

हिडिम्बा को वहीं छोड़कर पाण्डव माता कुन्ती के साथ दूसरे वन में गये। इसी प्रकार वे बहुत दिनों तक वनों में घूमते फिरे। घूमते-घूमते वे उस वन में पहुँचे, जहाँ महर्षि व्यास का आश्रम था। व्यास जी ने उन्हें एकचक्रा नगरी में जाकर रहने के लिये कहा।

व्यास जी की आज्ञा से ये उस नगरी में गये और एक ब्राह्मण के घर में ठहर गये। पाँचों भाई भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करने लगे। इसी नगर में वकासुर नाम का एक राक्षस रहता था। वह नित्यप्रति एक मनुष्य का भोजन करता था। कुछ दिन बाद, जिस ब्राह्मण के घर ये ठहरे थे, उसी के यहाँ की बारी आई। घर में रोने-पीटने का बड़ा करुणाजनक शब्द सुन पड़ा। कुन्ती दौड़कर उस ब्राह्मण के पास गई और बोली—आपने हमारे साथ बड़ा उपकार किया है। अब आप पर क्या दुःख पड़ा है! कृपा करके बताइये। हो सकेगा तो हम भी आपके दुःख में सहायक होंगे।

ब्राह्मण ने रोते-रोते उस राक्षस की सब घटना बता दी और कहा कि आज हमारी बारी है। हममें से कोई एक उसके पास जायेगा।

कुन्ती ने फिर कहा—आपने हमारे ऊपर बड़ा उपकार किया है। अब हम भी कुछ बदला चुकायेंगे। हमारे पाँच पुत्र हैं। उनमें से एक मैं उस राक्षस के पास भेज देती हूँ।

ब्राह्मण कहने लगा—ऐसा कभी न होगा। आप तो हमारे अतिथि हैं। आपके पुत्र को मैं अपने बदले कभी न जाने दूंगा। कुन्ती ने न माना और ब्राह्मण से उस राक्षस का पता पूछ कर भीम से कहा—बेटा! ब्राह्मण की रक्षा करो।

माता की आज्ञा पाकर भीम भोजन करके घूमते-घूमते धीरे-धीरे वन की ओर चले। देर हो जाने के कारण वकासुर भूख से व्याकुल होकर क्रोध से जल रहा था। भीम को धीरे-धीरे मस्ती में आता देखकर, वह गाली देता हुआ, मारने को झपटा। भला, भीम गाली कब सह सकते थे। उन्होंने वकासुर को उठाकर दे मारा और मारे लात-घूंसों के उसकी लीद निकाल दी।

वकासुर को मार कर भीम घर आये। उनको देखकर सब बहुत प्रसन्न हुए।

वकासुर के वध का समाचार शीघ्र ही घर-घर फैल गया। सब देखने को दौड़े। ब्राह्मण ने यह प्रकट नहीं किया कि कुन्ती के पुत्र ने वकासुर को मारा है, क्योंकि पाण्डव गुप्त रूप से रहना चाहते थे।

श्री कृष्णचन्द्र जी की कथा

मथुरा के राजा का नाम उग्रसेन था। उसका पुत्र कंस था। कंस बड़ा दुष्ट, पापी और अत्याचारी था। दीन-दुःखियों को सताने में उसने कोई कमी न छोड़ी थी। यहाँ तक कि अपने पिता उग्रसेन को भी कैद में डालकर अपने आप मथुरा का राजा बन बैठा था।

मथुरा से कुछ दूर युमना पार गोकुल नाम का एक गांव था। वहाँ शूरसेन नामक एक जमींदार रहता था। उसके पास गाय-बैल बहुत थे। दूध-दही और घी बहुत होता था। किसी बात की कमी नहीं थी। अपने गुणों और सच्चरित्रता के कारण प्रसिद्ध हो गया था। उसके पुत्र का नाम वसुदेव था। वह भी अपने पिता के समान ही धर्मात्मा और सज्जन था।

कंस के चाचा देवक की एक लड़की थी। उसका नाम देवकी था। जब वह विवाह के योग्य हुई, तब कंस ने अपने चाचा को सम्मति दी कि देवकी का विवाह वसुदेव के साथ कर दो। देवक को यह सम्बन्ध पसन्द आ गया और उसने देवकी का विवाह वसुदेव के साथ कर दिया।

विवाह के बाद जब बारात विदा हो रही थी, उस समय कंस अपनी बहिन देवकी को पहुँचाने गया। मार्ग में ही विद्वानों और दूरदर्शियों ने कंस को कहा कि तू जिस अपनी बहिन को पहुँचाने जा रहा है, उसी का आठवाँ पुत्र तेरे नाश का कारण होगा। इस बात पर कंस को भी विश्वास हो गया, उसे उसी समय क्रोध आया और वह देवकी और वसुदेव दोनों को मारने लगा कि न ये रहेंगे और न ही इनका पुत्र मुझे मारेगा। लोगों ने उसे बहुत समझाया पर वह नहीं माना। अन्त में जब वसुदेव ने उसे यह विश्वास दिलाया कि हमारी जो भी सन्तान होगी, मै उसे तुम्हें सौंप दिया करूंगा, तब उसका क्रोध कुछ शान्त हुआ। फिर भी उसने सोचा कि सम्भव है, यह अपनी सन्तान मुझे न दे, इसलिए कंस ने देवकी और वसुदेव को जेल में बन्द करवा दिया। एक-एक करके देवकी के 6 सन्तानें हुई, वे सब वसुदेव ने कंस को दे दीं और कंस ने उन्हें मार दिया। सातवां पुत्र समय से पूर्व ही उत्पन्न हो गया था, इसलिए उसका किसी को पता नहीं चला और वसुदेव ने उसे अपनी दूसरी स्त्री रोहिणी को दे दिया। उसी ने

उसका पालन-पोषण किया, उसका नाम बलराम रखा गया। बड़ा होकर यह अत्यन्त वीर, विद्वान और राजनीतिज्ञ बना।

समय आने पर आठवाँ पुत्र भी भाद्रपद बदि अष्टमी की रात्रि के बारह बजे उत्पन्न हो गया। वसुदेव को चिन्ता थी कि इसकी रक्षा किस प्रकार की जाए। गोकुल में उसका एक अभिन्न मित्र नन्द रहता था। वह भी बड़ा जमींदार था। दूध-घी की कमी नहीं थी। उसके पास भी गायें बहुत थीं। वसुदेव रात्रि में ही बच्चे को लेकर किसी प्रकार जेल से निकल भागे और भीषण आंधी-तुफान में भी युमना पार करके गोकुल में नन्द के पास पहुँच गए। उसी रात नन्द के भी एक लड़की उत्पन्न हुई थी। नन्द की स्त्री का नाम यशोदा था। यशोदा ने अपनी लड़की वसुदेव को दे दी और वसुदेव का लड़का अपने पास रख लिया।

वसुदेव उसी रात्रि में ही गोकुल से वापिस मथुरा आकर जेल में चले गये और प्रातः होते ही सन्तान उत्पन्न होने की सूचना कंस को दे दी गई। कंस बड़े हर्ष के साथ आया और उसने उस लड़की को उठाकर भूमि पर पटक कर मार दिया। इसी समय कंस के हृदय में यह आवाज हुई कि तुझे मारने वाला तो उत्पन्न हो चुका है। तभी से कंस चिन्तित रहने लगा और उस बालक की खोज करने लगा।

गोकुल में प्रातः होते हो खुशी के बाजे बजाये गये, बधाई के गीत गाये गये और निर्धनों को अन्न-वस्त्र और धन बांटे गये। यशोदा ने बड़े लाड़-प्यार से उस बालक का पालन किया। उसका नाम कृष्ण रखा गया। उस बालक को दूध-दही और मक्खन खाने का बहुत ही शौक था, वह खूब खाता-पीता और ग्वालों के बालकों के साथ खेलता-कूदता था। उसका शरीर बहुत हृष्ट-पुष्ट हो गया। वह बचपन में ही बड़ा वीर बन गया था। कंस को कृष्ण का पता लगा, तो उसने मारने के कई उपाय किये, किन्तु सब व्यर्थ हुए। कृष्ण सदा सबका भला चाहते थे। दुःखियों की रक्षा करते थे। अधर्म का नाश करते थे। इसलिए गोकुलवासी सब इनसे प्रेम करने लगे और यह चाहने लगे कि कृष्ण गोकुल से कभी न जायें।

जब श्रीकृष्ण कुछ बंड़े हुए, तो वसुदेव ने सोचा कि कृष्ण जैसा वीर और बलवान है, वैसा ही विद्वान् भी होना चाहिए। इस विचार से उन्होंने श्रीकृष्ण को काशी में सन्दीपन ऋषि के आश्रम में विद्या पढ़ने के लिए भेज दिया। सन्दीपन ऋषि के आश्रम में धनी और निर्धन सभी प्रकार के सैंकडों छात्र विद्या

पढ़ते थे। उनमें एक सुदामा नाम का छात्र भी था। वह बहुत निर्धन था। कृष्ण की उससे मित्रता हो गई। दोनों सदा साथ-साथ रहते थे।

एक दिन गुरु ने दोनों को वन में लकड़ियाँ लेने के लिए भेज दिया। वहाँ बहुत जोर से आँधी आई और मूसलाधार वर्षा होने लगी। दोनों एक वृक्ष के नीचे सिकुड़ कर बैठ गए और सर्दी से कांपने लगे। सुदामा ने अपने वस्त्र उतार कर श्रीकृष्ण को उढ़ाये, और श्रीकृष्ण ने अपने वस्त्र सुदामा को। रातभर दोनों उसी वृक्ष के नीचे रहे। प्रातःकाल होते ही लकड़ियाँ लेकर गुरु की सेवा में पहुँचे। अब से इन दोनों की मित्रता और भी बढ़ गई। दोनों साथ-ही-साथ रहने और पढ़ने लगे। शिक्षा समाप्त करके सुदामा अपने घर चले गये और श्रीकृष्ण अपने घर।

श्री कृष्ण और बलराम दोनों भाई बलवान् और विद्वान् थे। चारों ओर उनकी धाक थी। कंस ने सोचा कि श्रीकृष्ण इस प्रकार तो मारे नहीं जायेंगे, उन्हें यहाँ बुलाकर ही किसी प्रकार मारना चाहिए। श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए कंस ने अक्रूर को भेजा। अक्रूर बहुत सज्जन थे, वह श्रीकृष्ण को ले जाना नहीं चाहते थे, किन्तु कंस के भय से उन्हें ऐसा करना ही पड़ा। जब अक्रूर श्रीकृष्ण जी को गोकुल से कंस के पास ले जा रहे थे, उस समय गोकुल वासियों की दशा बड़ी व्याकुल हो गई।

अक्रूर के साथ श्रीकृष्ण और बलराम कंस के दरबार में गए। वहाँ कंस के वीरों के साथ उनका भयानक युद्ध हुआ, अन्त में श्री कृष्ण ने कंस को मार डाला। कंस की मृत्यु से सब ओर प्रसन्नता छा गई। सब कैदी छोड़ दिए गए और उग्रसेन को फिर गद्दी पर बैठा दिया गया। राजा उग्रसेन पहिले के समान फिर धर्मपूर्वक राज्य करने लगे।

कंस की मृत्यु से उसके श्वसुर जरासन्ध को बड़ा दुःख हुआ। वह श्रीकृष्ण और बलराम से उसका बदला लेना चाहता था। उसने कई वार उन पर चढ़ाई की और युद्ध किया किन्तु प्रत्येक वार उसे हारना ही पड़ा। श्रीकृष्ण ने सोचा कि यहाँ रहने से प्रजा को कष्ट होता है, और युद्ध में व्यर्थ ही इनका नाश होता है, इसलिए वह स्थान छोड़ देना चाहिए। यह विचार कर श्रीकृष्ण मथुरा से द्वारकापुरी चले गए। श्रीकृष्ण जी विद्वान्, धर्मात्मा, न्यायकारी और राजनीतिज्ञ राजा थे। इनका यश चारों ओर फैल रहा था।

एक निर्धन ब्राह्मण सुदामा बचपन में इनका मित्र था। अब उसका विवाह भी हो चुका था। किन्तु वह पहले के समान ही निर्धन था। उसके शरीर पर

वस्त्र नहीं, पैरों में जूता नहीं और भरपेट खाने को अन्न नहीं।

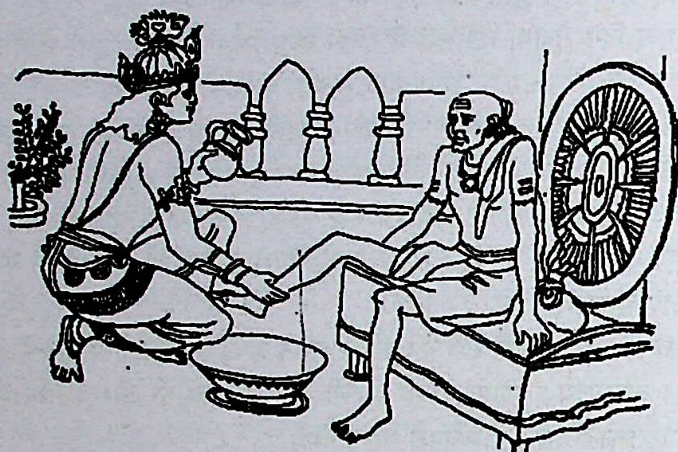
एक दिन सुदामा की स्त्री ने उससे कहा कि—पति-देव! तुम अपने मित्र श्रीकृष्ण की बचपन की बहुत कथाएं सुनाया करते हो, उन्हें अपना मित्र बताते हो। वह राजा हैं, तुम उनके पास जाओ तो सही, सम्भव है वह इस समय हमारी कुछ सहायता कर दें और हमारे निर्धनता के कष्ट दूर हो जाएँ। सुदामा बोला—प्रिये! हमने आज तक किसी की सहायता नहीं की है, फिर हमारी सहायता कोई क्यों करेगा? अपनी स्त्री के बहुत समझाने-बुझाने पर सुदामा श्रीकृष्ण जी से मिलने के लिए द्वारकापुरी को चल दिए।

चलते समय उनकी स्त्री ने एक फटे-पुराने कपड़े की पोटली में थोड़े से कच्चे चावल बाँध दिये। सुदामा ने वह पोटली बगल में दबा ली और फटे कपड़ों में नंगे पैर चलते-चलते द्वारकापुरी पहुँच गए।

जिस समय सुदामा राजमहल के द्वार पर पहुँचे तब उन्होंने द्वारपाल से श्रीकृष्ण जी का पता पूछा और अपना नाम सुदामा बताया। द्वारपाल ने अन्दर जाकर श्रीकृष्ण जी से कहा—

शीश पगा न झगा तन में, प्रभु! जानै को आय बसै केहि धामा।।
धोती लटी-सी फटी दुपटी, अरु पैर उपानह और न सामा।।
द्वार खड़े द्विज दुर्बल एक, रह्यो तकि तो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपन नाम सुदामा।।

सुदामा का नाम सुनते ही श्रीकृष्ण जी भाग कर आए और बड़े प्रेम से उनके साथ मिले। श्रीकृष्ण जी का हृदय हर्ष से विभोर हो गया, वे गद्गद् हुए और उनका शरीर पुलकित हो उठा। अपने साथ ले जाकर सुदामा को गद्दी पर बैठाया और श्रीकृष्ण जी ने उनके चरण स्वयं अपने हाथों से धोये और उनको स्नानादि कराने के अनन्तर स्वच्छ वस्त्र धारण कराये। उनका बहुत आदर-सत्कार किया। इससे पूर्व श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने सुदामा से पूछा—भाभी ने हमारे लिए क्या भेजा है? सुदामा बोले—हम निर्धनों के पास क्या है, जो आप जैसे राजाओं के लिऐ ला सकें! ऐसा कहते-कहते शर्म के कारण सुदामा चावलों की पोटली को छिपाने लगा। किन्तु श्रीकृष्ण जी समझ गए थे कि इस पोटली में अवश्य कुछ है और शर्म के कारण यह नहीं दे रहे। दोनों में छीना-झपटी होने लगी। पोटली का कपड़ा बहुत पुराना था, वह फट गया और चावल भूमि पर बिखर गए। श्रीकृष्ण जी ने उन्हें चुग-चुगकर बड़े प्रेम से कच्चे ही खाना आरम्भ कर दिया।



बहुत दिनों के बाद मिलने के कारण श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कई दिन तक सुदामा को अपने महलों में ठहराया। उनसे बाल्यकाल की सब बातें करके वही पुरानी मित्रता उन्हें याद हो आई। श्रीकृष्णचन्द जी ने सुदामा की बहुत सहायता की। अन्न और वस्त्र तथा धन दिया। उनके मकान भी अच्छे और पक्के बनवा दिए। सुदामा को अब किसी प्रकार की कमी न रही। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने उस बात की चिन्ता नहीं कि अब वे राजा हैं और सुदामा एक बहुत निर्धन ब्राह्मण। उन्होंने अपनी बाल्यकाल की मित्रता नहीं भुलाई। सच्ची मित्रता इसी को कहते हैं।

श्रीकृष्णचन्द्र जी का सारा जीवन सज्जनों की रक्षा, दुष्टों का नाश और धर्म की स्थापना के लिए ही व्यतीत हुआ। उन्होंने अपने सुख के लिए कोई कार्य नहीं किया। उनके सब काम परोपकार के निमित्त ही होते थे।

द्रौपदी का स्वयम्वर

वकासुर को मारने के बाद पाण्डव वेदाध्ययन करते हुए उसी ब्राह्मण के घर में निवास करने लगे। कुछ दिनों के बाद उसके यहाँ एक सदाचारी ब्राह्मण आया। पाण्डवों को उससे द्रौपदी के जन्म की कथा और उसके स्वयम्वर की बात मालूम हुई। स्वयम्वर का समाचार सुनकर पाण्डवों का मन बेचैन हो गया। उनकी व्याकुलता और द्रौपदी के प्रति प्रीति देखकर कुन्ती ने कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो पांचाल देश में चलें! सब भाईयों ने स्वीकृति दे दी और प्रस्थान की तैयारी प्रारम्भ हो गई।

उसी समय श्री व्यासदेव जी पाण्डवों से मिलने के लिए एक चक्रा नगरी में आए। सब उनके चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़ खड़े हो गए। तत्पश्चात् पाण्डवों ने व्यास जी की आज्ञा से पांचाल देश की यात्रा की। जब अपनी माता के साथ पाँचों भाई द्रुपद के देश की ओर जा रहे थे, तब मार्ग में उन्हें अनेक ब्राह्मणों के दर्शन हुए। वे भी पांचाल देश में द्रौपदी का स्वयम्वर देखने जा रहे थे। सब साथ-साथ चलने लगे। नगर में पहुँचकर पाण्डवों ने एक ब्राह्मण के घर अपना डेरा जमाया। वहाँ वे भी ब्राह्मणों की तरह अपना जीवन बिताने लगे।

स्वयम्वर का दिन आ गया। सभा-मण्डप बनाया गया। अनेक प्रकार से उसे सजाया गया। सबके बैठने के लिए यथायोग्य स्थान बनाए गए। स्वयम्वर में भाग लेने के लिए देश-देश के राजा, महाराजा और राजुकमार आए थे। दुर्योधन, कर्ण, श्री कृष्ण और शिशुपाल आदि भारतवर्ष के समस्त राजागण भी उस सभा में विराजमान थे। सब अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। पाण्डव भी ब्राह्मणों की मण्डली में जा बैठे।

जब सब अपने-अपने आसनों पर बैठ चुके, तब द्रौपदी अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ सभा में पधारीं। उसके हाथ में एक सुन्दर सोने की माला सुशोभित हो रही थी।

राजा द्रुपद की ओर से धृष्टद्युम्न ने घोषणा की कि स्वयम्वर के लिए आए हुए राजाओं तथा राजकुमारो! आप लोग ध्यान देकर सुनें! यह धनुष है, ये बाण हैं और यह आप लोगों के सामने लक्ष्य है। आप लोग घूमते हुए यन्त्र के छिद्र में से अधिक-से-अधिक पाँच वाणों के द्वारा लक्ष्यबेध कर दें। जो पुरुष यह महान् कर्म करेगा, मेरी बहिन द्रौपदी उसी के गले में माला डालेगी।

इसके पश्चात् धृष्टद्युम्न ने वहाँ उपस्थित सब राजाओं और राजकुमारों का परिचय द्रौपदी को दिया। एक-एक करके सब राजकुमार उठे और हार मान कर बैठ गए। दुर्योधन भी धनुष-बाण लेकर उठा और लज्जित होकर बैठ गया। दुर्योधन आदि को निराश देखकर कर्ण उठा। धनुष के पास जाते ही उसने डोरी चढ़ा दी। वह क्षण भर में ही लक्ष्य को बेध देता किन्तु द्रौपदी जोर से बोल उठी कि मैं सूतपुत्र को नहीं वरुँगी। कर्ण ने धनुष को नीचे रख दिया। शिशुपाल, जरासन्ध और शल्य आदि सबकी वही दशा हुई जो दुर्योधन की हुई थी। इस प्रकार जब कोई भी लक्ष्य वेध न कर सका तब अर्जुन के चित्त में यह संकल्प उठा कि अब मैं चलकर लक्ष्यवेध करूँ।

अपने बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन उठे। इस ब्राह्मण को देखकर सब आश्चर्य करने लगे। कोई तो इसके साहस की प्रशंसा करने लगा और कोई हँसी उड़ाने लगा। अर्जुन ने धनुष-बाण उठाया और पता भी न लगा कि लक्ष्य वेध दिया। घूमते हुए चक्र के मध्य में से जाकर अर्जुन का बाण ऊपर लटकी हुई मछली की आँख में चुभ गया। द्रौपदी ने माला तत्काल अर्जुन के गले में डाल दी।

यह देखकर सब राजा क्रोधित हो उठे। वे कहने लगे कि द्रुपद ने हमारा अपमान किया है। वह हमारे रहते हुए ब्राह्मण के साथ अपनी कन्या का विवाह करना चाहता है। सब मिलकर द्रुपद को मार डालो। यह कह कर वे द्रुपद पर आक्रमण करने लगे। डर के कारण द्रुपद भाग कर ब्राह्मणों की शरण में आये। ब्राह्मणों ने कहा—हम सब राजाओं का संहार कर डालेंगे। अर्जुन ने सबको शान्त करके कहा—आप शान्ति से बैठे रहिये, मैं अकेला ही अपने बाणों से सबको छिन्न-भिन्न कर डालूँगा। राजाओं ने लड़ाई आरम्भ कर दी, बहुत घमासान युद्ध हुआ, किन्तु अर्जुन और भीम ने सबको मजा चखा दिया। राजा लोग हारकर अपना-सा मुँह लिए अपने-अपने डेरों पर चले गए।

युधिष्ठिर तो नकुल और सहदेव को लेकर पहिले ही अपने डेरे पर चले गए थे। अब अर्जुन और भीम भी ब्राह्मणों से घिरे हुए द्रौपदी को साथ लेकर अपने निवास स्थान की ओर चल पड़े। माता कुन्ती अर्जुन और भीम के लौटने की प्रतीक्षा कर ही रही थी कि उसी समय तीसरे पहर भीमसेन और अर्जुन द्रौपदी को साथ लिए हुए अपने घर पर आ गए। द्वार पर से ही अर्जुन ने कहा—माँ! आज हम यह भिक्षा लाए हैं। कुन्ती ने बिना देखे ही उत्तर दिया—तुम सब मिलकर भोग करो। कुन्ती ने बाहर आकर जब द्रौपदी को देखा, तब वह चिन्ता करने लगी और कहने लगी कि मैंने यह क्या बात कह दी। उसने युधिष्ठिर से सलाह की। फिर युधिष्ठिर और कुन्ती की आज्ञा से द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी बनी।

पाण्डवों की श्रीकृष्ण जी से भेंट

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने पाण्डवों को स्वयम्वर में ही पहचान लिया था। अब वे अपने बड़े भाई बलराम जी के साथ पाण्डवों के निवास-स्थान पर आए। उन्होंने वहाँ पाँचों भाइयों को देखकर पहिले युधिष्ठिर को प्रणाम किया और फिर अपने-अपने नाम बताए। पाण्डवों ने उनका बहुत स्वागत-सत्कार किया। फिर

दोनों भाइयों ने अपनी बुआ कुन्ती के चरणों में प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण जी से पूछा—हम लोग तो यहाँ छिप कर रह रहे हैं, आपने हमें कैसे पहचान लिया। श्रीकृष्ण जी बोले—महाराज! क्या लोग छिपी हुई आग को नहीं ढूँढ़ लेते? आज भीम और अर्जुन ने जिस पराक्रम का परिचय दिया है, वह पाण्डवों के अतिरिक्त और किस में सम्भव है?

द्रौपदी का विवाह

राजा द्रुपद बहुत चिन्तित हुए कि द्रौपदी को न जाने कौन ले गया है! उन्होंने अपने पुत्र धृष्टद्युम्न को उन ब्राह्मणों का पता लगाने के लिए गुप्त रूप से भेजा। धृष्टद्युम्न ने छिपकर पाण्डवों का सब भेद ले लिया और जाकर सब समाचार द्रुपद को कह सुनाया। एक दिन पाण्डवों का परिचय प्राप्त करने के लिऐ राजा द्रुपद के दरबार से एक मनुष्य युधिष्ठिर के पास जाकर बोला—महाराज द्रुपद ने आप लोगों के भोजन के लिए रसोई तैयार कराली है; आप द्रौपदी के साथ वहाँ चलिए। पाँचों भाइयों ने माता कुन्ती और द्रौपदी के साथ राजभवन के लिए प्रस्थान कर दिया।

वहाँ पहुँच कर सब का स्वागत-सत्कार किया गया। माता कुन्ती और द्रौपदी तो रनवास में चली गईं और पाण्डव दूसरे कमरे में रहे। भोजन के पश्चात् द्रुपद ने युधिष्ठिर को अलग बुलाकर पूछा कि आप अपना परिचय दीजिए कि आप लोग कौन हैं? युधिष्ठिर ने कहा—मैं महात्मा पाण्डु का पुत्र युधिष्ठिर हूँ, मेरे चारों भाई यहाँ बैठे हुए हैं। मेरी माता कुन्ती राजकुमारी द्रौपदी के साथ रनवास में है। यह सुनकर महाराज द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए।

राजा द्रुपद की आज्ञा से धौम्य ऋषि ने द्रौपदी का विवाह एक-एक करके पाँचों पाण्डवों के साथ कराया। विवाह के अनन्तर द्रुपद ने बहुत से रत्न, धन और श्रेष्ठ सामग्रियां पाण्डवों को दीं। उत्तम जाति के घोड़ों से जुते सौ रथ, सौ हाथी, वस्त्र आभूषण आदि प्रत्येक पाण्डव को दिए गए। इस प्रकार पाण्डव अपार सम्पत्ति और द्रोपदी को प्राप्त करके राजा द्रुपद के पास ही पांचाल देश में सुख से रहने लगे।

पाण्डवों को आधा राज्य

पाण्डवों के जीवित होने का समाचार धीरे-धीरे फैलने लगा। जब कौरवों को मालूम हुआ कि पाण्डव लाक्षागृह में जलकर मरे नहीं हैं, वे अभी जीवित हैं, तो वे बहुत लज्जित हुए। दुर्योधन आदि ने धृतराष्ट्र को बहुत बहकाया कि

उन्हें नहीं रहने देना चाहिए। क्योंकि यदि वे यहाँ रहे तो सदा झगड़ा ही होता रहेगा और वे आपको भी गद्दी से उतार देंगे। परन्तु भीष्म जी, विदुर जी और द्रोणाचार्य आदि सबकी सम्मति यही थी कि पाण्डवों को आधा राज्य दे ही देना चाहिए। दुर्योधन आदि के बहुत विरोध करने पर भी धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य देने का निश्चय कर ही लिया।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर पाण्डवों को लिवाने के लिए पांचाल देश गए। उनके साथ कुन्ती, द्रौपदी और पाँचों पाण्डव हस्तिनापुर आ गए। युधिष्ठिर के आने का समाचार सुनकर प्रजा बहुत प्रसन्न हुई। यह युधिष्ठिर को बहुत चाहती थी। धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य देकर खाण्डवप्रस्थ में रहने के लिए कहा। युधिष्ठिर सबको प्रणाम करके अपनी माता कुन्ती, द्रौपदी और भाइयों को लेकर खाण्डवप्रस्थ चले गए। उन्होंने वहाँ श्रीकृष्ण चन्द्र जी को भी बुला लिया।

युधिष्ठिर ने खाण्डवप्रस्थ को सब प्रकार से सुसज्जित एक बड़ा नगर बना लिया और उसका नाम इन्द्रप्रस्थ रख दिया। वहाँ वह सुखपूर्वक रहने लगे। नगर बस जाने पर श्रीकृष्ण जी द्वारिका चले गए।

अर्जुन की तीर्थयात्रा

पाँचों पाण्डवों का द्रौपदी के साथ विवाह हो जाने के पश्चात्, उन्होंने यह नियम बनाया कि द्रौपदी पाँचों भाइयों की स्त्री समझी जावे, जब यह एक के पास हो, तब दूसरा भाई उसके पास न जावे। यदि कोई भूल से चला जावे तो उसे बारह वर्ष पर्यन्त देश-देशान्तरों में तीर्थयात्रा के हेतु जाने का दण्ड दिया जावे।

एक दिन कुछ लुटेरे किसी ब्राह्मण की गौ चुरा कर ले चले। ब्राह्मण रोता हुआ अर्जुन के पास आया। अर्जुन ने धनुष-बाण उस घर में रखे थे, जहाँ उस समय युधिष्ठिर द्रौपदी के पास बैठे थे। अर्जुन ने सोचा कि उस घर में युधिष्ठिर द्रौपदी के पास बैठे हैं, यदि मैं धनुष-बाण लेने के लिए इस समय वहाँ चला गया, तो नियम टूट जाएगा। किन्तु प्रजा की रक्षा करना भी हमारा धर्म है। मैं नियम भंग करके उसका दण्ड भोग सकता हूँ, किन्तु प्रजा को लुटते नहीं देख सकता। ऐसा विचार कर अर्जुन उस घर में चले गए, और वहाँ से धनुष-बाण लेकर उन लुटेरों का पीछा किया और उन्हें मार कर ब्राह्मण की गौ उसे दे दी।

घर आकर अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—मैंने नियमभंग किया है, इसलिए

बारह वर्ष के लिए तीर्थयात्रा को जाता हूँ। युधिष्ठिर ने बहुत समझाया कि मत जाओ। किन्तु अर्जुन नहीं माने और बस, गुरुजनों को प्रणाम करके तीर्थयात्रा को चल दिए।

श्रेष्ठ पुरुष अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना परम धर्म समझते हैं। अर्जुन तीर्थों पर घूमते-घामते अनेक ऋषि-मुनियों और विद्वानों से मिले। उनसे अर्जुन ने बहुत लाभ उठाया।

इस तीर्थयात्रा के समय ही अर्जुन ने नागजाति की कन्या उलूपी से विवाह कर लिया। उसके बाद मणिपुर में वहाँ की राजकन्या चित्रांगदा से एक और विवाह किया। इससे बभ्रुवाहन नामक अत्यन्त वीर पुत्र उत्पन्न हुआ।

अर्जुन का सुभद्रा के साथ विवाह

मणिपुर में चित्रांगदा से विवाह करने के बाद अर्जुन पश्चिम दिशा में प्रभासतीर्थ पर पहुँचे। उनके बारह वर्ष समाप्त हो चुके थे। वहाँ उस समय एक बड़ा भारी मेला था। मेले में श्रीकृष्ण जी भी आये हुए थे। अर्जुन का आना सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। वे उनके सच्चे मित्र थे। दोनों मित्र कुछ दिन साथ ही रहे। अर्जुन ने अपनी बारह वर्ष की यात्रा का सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया। सुनकर वे बड़े आनन्दित हुए।

श्रीकृष्ण जी मेले से अपनी राजधानी द्वारका आ गए। अर्जुन भी उनके साथ ही चले गये। एक वार दैवतक पर्वत पर एक मेला भरा। वहाँ श्रीकृष्ण जी के साथ अर्जुन भी चले गये। एक स्थान पर श्री कृष्ण जी की बहिन सुभद्रा अपनी सखियों के साथ खड़ी थी। उसे देखकर अर्जुन का मन उस पर मोहित हो गया। श्रीकृष्ण जी से अर्जुन ने उसका पता पूछा। श्रीकृष्ण अर्जुन के मन का भाव समझ कर बोले—यह मेरी बहिन सुभ्रदा है। यदि आप इससे विवाह करना चाहते हैं तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु स्वयम्वर में सुभद्रा आपको ही वरेगी, यह मैं नहीं कह सकता, इसलिए आप इसे किसी अवसर पर बलपूर्वक ले जाइए।

श्रीकृष्ण जी की बात सुनकर अर्जुन परम प्रसन्न हुए और उन्होंने एक दूत भेजकर सुभद्रा से विवाह करने के लिए युधिष्ठिर की अनुमति मँगवा ली। एक दिन अवसर पाकर अर्जुन सुभद्रा को रथ में बैठाकर ले भागे। यह देखकर यदुवंशियों को बड़ा क्रोध आया। बलराम ने तो उनसे युद्ध करने के लिऐ सेना भी तैयार कर ली। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण जी ने उन सबको समझाया कि अर्जुन

के साथ सुभद्रा का विवाह हो जाने से हमारा बल बढ़ेगा। अर्जुन नीच वंश के नहीं हैं। श्री कृष्ण जी की बात सबने मान ली और अर्जुन को वापिस बुलाकर विधिपूर्वक उसका विवाह सुभद्रा के साथ कर दिया।

सुभ्रदा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम **अभिमन्यु** रखा गया। वह बचपन में ही बड़ा बलवान् और वीर हो गया था।

युधिष्ठिर आदि की सन्तान

द्रौपदी के गर्भ से पाँचों पाण्डवों के द्वारा एक-एक वर्ष के अन्तर पर पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर के पुत्र का नाम **प्रतिविन्ध्य** रखा, भीमसेन के पुत्र का नाम **सुतसोम** रखा गया, अर्जुन के पुत्र का नाम **श्रुतकर्मा** हुआ, नकुल के पुत्र का नाम **शतानीक** पड़ा और सहदेव के पुत्र का नाम हुआ **श्रुतसेन**। धौम्य ऋषि ने इन सब बालकों के सब संस्कार विधिपूर्वक कराये। बालकों ने वेद आदि पढ़ कर अर्जुन से युद्ध-विद्या सीख ली। इन सब बातों से पाण्डवों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

खाण्डव-दाह की कथा

धर्मराज युधिष्ठिर को पाकर प्रजा सुख और शान्ति के साथ उन्नति करने लगी। उनके राज्य-काल में धर्म का बोल-बाला हो गया। प्रजा युधिष्ठिर को केवल राजा मानकर ही आनन्दित नहीं होती थी, बल्कि वे कार्य भी ऐसे ही करते थे जो प्रजा को अभीष्ट होते थे। युधिष्ठिर कभी अनुचित, असत्य अथवा अप्रिय वाणी नहीं बोलते थे। वे जैसे अपनी भलाई चाहते, वैसे ही प्रजा की थी!

धर्मराज के शासन और प्रेम से प्रभावित होकर उनके नगर में बहुत प्रजा आकर रहने लगी। यहाँ तक कि वहाँ प्रजा के रहने के लिये स्थान की कमी हो गई। इन्द्रप्रस्थ के पास ही एक अति विशाल वन था। उसमें बड़े-बड़े भयानक जीव-जन्तु और राक्षस रहते थे। उस वन का नाम **खाण्डव** था। अर्जुन ने युधिष्ठिर की आज्ञा और श्रीकृष्ण की सम्मति से उस वन को जलवा दिया। वन में से जो जीव-जन्तु और राक्षस भागे, उनको अर्जुन और श्रीकृष्ण जी ने मार डाला। इसके बाद वन की जो भूमि निकली, सफाई करके वह भी प्रजा के बसने के योग्य बन गई।



बाल महाभारत

2. सभा-पर्व

युधिष्ठिर का सभा-भवन

जब खाण्डव वन जलाया गया, उस समय अर्जुन ने श्री कृष्ण जी की सलाह से मय नामक एक राक्षस को बचा लिया था। वह प्रसिद्ध शिल्पकार था। अर्जुन और श्रीकृष्ण जी उसे महाराज युधिष्ठिर के पास ले गये। उसके गुणों से प्रभावित होकर युधिष्ठिर ने उसका आदर-सत्कार किया। मय ने अर्जुन के उपकार का बदला देना चाहा और युधिष्ठिर जी के सामने यह इच्छा प्रकट की कि वह उनके लिए एक सभा-भवन बनाना चाहता है।

युधिष्ठिर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। सभा-भवन बनाने की बस सामग्री मय को दे दी गई। उसने निपुणता के साथ एक सभा-भवन ऐसा तैयार कर दिया जो अपूर्व बहुमूल्य मणियों और रत्नों से सुशोभित तथा दिव्य था। उस समय वैसा सभा-भवन संसार में और कहीं नहीं था।

सभा भवन के बन चुकने पर महाराज युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक उसमें प्रवेश किया और उसके बाद वही उनका मुख्य सभा-स्थान बन गया। एक दिन युधिष्ठिर सभा में बैठे हुए थे कि नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने महाराज को सलाह दी कि आप एक राजसूय-यज्ञ कीजिये, इससे आपकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जाएगी। नारद मुनि का परामर्श युधिष्ठिर ने मान लिया।

जरासन्ध-वध

श्रीकृष्ण जी राजनीति में बहुत निपुण थे। वे पाण्डवों के मित्र भी बन गए थे और उनको धर्मात्मा जानकर उनका हित भी चाहते थे। इसलिए युधिष्ठिर भी विशेषरूप से उनसे ही सलाह लिया करते थे।

एक दिन युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ करने की अपनी इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्ण जी बोले—राजसूय-यज्ञ अवश्य करना चाहिए। किन्तु यदि मगध देश

के राजा जरासन्ध को नहीं जीता गया, तो वह यज्ञ में अवश्य कुछ विघ्न करेगा। इसलिए यज्ञ से पहिले उसे अवश्य ही जीत लेना चाहिए।

जरासन्ध इससे पहिले भी अनेक वार कंस का बदला लेने के लिये श्रीकृष्ण जी पर हमला कर चुका था। इसलिए श्रीकृष्ण जी उससे द्वेष भी रखते थे और उसे मारना भी चाहते थे।

जरासन्ध बड़ा वीर और पराक्रमी राजा था। बहुत से राजा उसके यहाँ कैद थे। श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन ने जाकर जरासन्ध को युद्ध के लिए ललकारा। वह कभी किसी से नहीं हारा था, इसलिए इनके ललकारने से उसे बड़ा क्रोध आया। वह भीम के साथ मल्लयुद्ध करने लगा। उन दिनों धर्म युद्ध होता था। एक व्यक्ति के साथ एक ही व्यक्ति युद्ध कर सकता था।

तेरह दिन तक युद्ध होता रहा। चौदहवें दिन जरासन्ध थक गया। श्रीकृष्ण जी ने उसके थक जाने की बात भीम को इशारे से समझा दी। भीम ने बड़े जोर से जरासन्ध को उठाकर दे मारा और उसकी दोनों टाँगें पकड़ उसे बीच में से चीर डाला। जरासन्ध बहुत जोर से चिल्लाया और उसके प्राण निकल भागे।

जरासन्ध की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण जी ने उसके पुत्र सहदेव को वहाँ का राजा बना दिया और सब कैदी राजाओं से कहा कि वे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हों। सबने उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। सहदेव भी युधिष्ठिर के अधीन हो गया।

जरासन्ध का वध करके वे सब इन्द्रप्रस्थ वापिस आ गए। श्रीकृष्ण जी कुछ दिन वहाँ रह कर द्वारका चले गए और इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ की तैयारियाँ आरम्भ हो गई।

पाण्डवों की दिग्वजय

एक दिन अर्जुन ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं दिग्विजय के लिए जाऊँ और पृथ्वी के सभी राजाओं से आपके लिए कर प्राप्त करूँ? युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—अवश्य! तुम्हारी विजय निश्चित है।

युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त करके चारों भाइयों ने दिग्विजय के लिए यात्रा की। अर्जुन उत्तर दिशा की ओर गये और उन्होंने चीन, तिब्बत, बलख, तुर्किस्तान और हरिवर्ष आदि देश के राजाओं को पराजित करके उनसे कर प्राप्त किया और राजसूय-यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए उन्हें निमन्त्रण दिया। उत्तर दिशा

पर विजय करके वीर अर्जुन बड़ी प्रसन्नता से इन्द्रप्रस्थ लौट आए और सारा धन एवं सारे रथ, घोड़े आदि धर्मराज को सौंप दिये।

अर्जुन के साथ ही भीमसेन भी युधिष्ठिर की आज्ञा से पूर्व दिशा की ओर चल पड़े थे। भीमसेन ने समस्त पूर्व दिशा पर अपना अधिकार जमा लिया। शिशुपाल आदि कई राजा तो बिना युद्ध के ही उनकी आधीनता मान गये और युधिष्ठिर को उन्होंने कर देना स्वीकार कर लिया। पूर्व दिशा में विजय प्राप्त करके भीमसेन सब धन लेकर इन्द्रप्रस्थ लौट लाए और उन्होंने बड़े प्रेम से सारा धन युधिष्ठिर को सौंप दिया।

इसी प्रकार नकुल और सहदेव भी पश्चिम और दक्षिण दिशा की ओर गए। चारों भाइयों के दिग्विजय करके लौट आने पर पाण्डवों की कीर्ति-पताका दूर-दूर तक फहराने लगी और महाराजा युधिष्ठिर के कोष में असंख्य धन एकत्रित हो गया।

राजसूय-यज्ञ

जब धर्मराज ने देखा कि मेरे अन्न, वस्त्र, रत्न आदि के भण्डार सर्वथा पूर्ण हैं, तब उन्होंने यज्ञ करने का संकल्प किया। मित्रों ने भी उनसे आग्रह किया कि यज्ञ करने का यही समय ठीक है। श्रीकृष्ण जी भी द्वारका से आ गए और यज्ञ करने के लिए कहने लगे। महाराजा युधिष्ठिर चक्रवर्ती राजा थे। उस समय इनका सार्वभौम राज्य था। पृथ्वी के सब राजा इनके आधीन थे। सब राजाओं को निमन्त्रण भेजे गए। नकुल हस्तिनापुर गए और वहाँ उन्होंने भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, कृपाचार्य, विदुर और दुर्योधन आदि को निमन्त्रण दिया। युधिष्ठिर ने शकुनि, कर्ण, शल्य, जयद्रथ, धृष्टद्युम्न, विराट, शिशुपाल और द्रुपद आदि राजाओं को सम्मानपूर्वक बुलाया। धर्मराज की आज्ञा से चीन का भगदत्त, अमेरिका का बभ्रुवाहन और यूरोप को बिडालाक्ष आदि भी यज्ञ में सम्मिलित हुए। सब बहुमूल्य भेंट ले-लेकर आए थे। सबको अलग-अलग स्थानों में सत्कारपूर्वक ठहराया गया।

राजसूय-यज्ञ को निर्विघ्न सम्पन्न करने तथा सुनियोजित विधि से सम्पूर्ण करने की दृष्टि से युधिष्ठिर ने सबको एक-एक काम सौंप दिया। दुःशासन भोजन का प्रबन्ध करने में, अश्वत्थामा ब्राह्मणों की सेवा में और संजय राजाओं के सत्कार में नियुक्त किये गए। भीष्म और द्रोण सभी कार्यों का निरीक्षण करने लगे। कृपाचार्य दक्षिणा देने पर नियुक्त हुए। महात्मा विदुर खर्च करने के काम

पर और दुर्योधन भेंट में आए पदार्थों के रखने पर नियुक्त हुए। श्रीकृष्ण ने सबके पैर धोने का कार्य स्वयं अपने जिम्मे लिया।

यज्ञ का अनुष्ठान समाप्त हो गया। अतिथियों को मुँह-माँगी वस्तुएँ देकर उनका सत्कार किया गया। उस यज्ञ से सभी की तृप्ति हो गई।

शिशुपाल का वध

जब यज्ञ समाप्त हो चुका, तब महात्मा भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा-अब आप सब राजाओं को यथायोग्य सत्कार कीजिये। ये लोग हमारे यहाँ बहुत दिनों के बाद आये हैं, इसलिए सबकी अलग-अलग पूजा करो और जो सर्वश्रेष्ठ हो उसकी सबसे पहिले। युधिष्ठिर ने पूछा—पितामह! कृपा करके बतलाइये कि सबसे पहिले किसकी पूजा करें? भीष्म जी ने कहा—पृथ्वी पर श्रीकृष्ण जी ही सबसे बढ़कर पूजा के पात्र हैं। भीष्म जी की आज्ञा मिलते ही सहदेव ने विधिपूर्वक श्रीकृष्ण जी की पूजा की और उन्होंने उसे स्वीकार किया। चारों ओर आनन्द मनाया जाने लगा। और सब दिशाएँ फूली न समाई।

यह देखकर शिशुपाल बहुत बिगड़ा। उसने समझा कि मेरा अपमान हो रहा है। ऐसा विचार कर वह भीष्म, युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण आदि गुरुजनों को गालियाँ देने लगा। भीष्म जी और युधिष्ठिर ने उसे बहुत समझाया, किन्तु वह नहीं माना।

जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव जलाना और जल का स्वभाव शान्त करना है, उसी प्रकार दुष्ट मनुष्यों का स्वभाव दुष्टता करना है। सैकड़ों उपदेश करने से भी दुष्टों का स्वभाव नहीं बदला करता।

शिशुपाल श्रीकृष्ण जी की बुआ का लड़का था। श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के जन्म के समय उसकी माता को यह वचन दे दिया था कि मैं शिशुपाल के ऐसे बड़े-बड़े सौ अपराध क्षमा कर दूँगा, जिनके बदले इसको मार डालना चाहिए। इसी वचन के अनुसार श्रीकृष्ण उसे बार-बार क्षमा करते रहे थे। इससे पहिले यह श्रीकृष्ण जी से सौ वार हठ कर चुका था। शिशुपाल को अब भी अपने अपराधों का ज्ञान नहीं हुआ। मृत्यु उसके सिर पर नाच रही थी।

बहुत समझाने पर भी जब शिशुपाल नहीं माना तब श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर क्षणभर में धड़ से अलग कर दिया। श्रीकृष्ण जी ने चेदिपुरी की गद्दी पर उसके पुत्र को बैठा दिया। यज्ञ समाप्त हो गया और सब राजा लोग प्रसन्नचित्त हो, अपने-अपने देश को चले गए। युधिष्ठिर जी

धर्मपूर्वक राज्य करने लगे।

दुर्योधन की हँसी

राजसूय–यज्ञ समाप्त होने पर सब राजा तो चले गए, किन्तु दुर्योधन युधिष्ठिर का सभा-भवन देखने के लिए वहाँ ठहर गया। सभा-भवन की अद्भुत शिल्पकला को वह अपने-आप ही देखने लगा। सभा-भवन का फर्श बहुत विचित्र रीति से बना था। जहाँ देखने से स्थल जान पड़ता था, वहाँ जल था, और जहाँ जल प्रतीत होता था, वहाँ स्थल था। रंग-बिरंगे पत्थरों से वह ऐसा ही अद्भुत बनाया गया था।

दुर्योधन एक स्थल को जल समझ गया और कपड़े उठाकर चलने लगा। दूसरे स्थान पर वह जल को स्थल जानकर निर्भय होकर चला। वहाँ वह सहसा पानी में गिर पड़ा और उसके कपड़े भीग गए। सब लोग हँसने लगे। उसे नए वस्त्र पहिनने को दिए गए। वह एक जगह दीवार में द्वार समझ कर अन्दर घुसने लगा, तो सिर में टक्कर खाकर गिर पड़ा। दुर्योधन की यह बातें देखकर भीमसेन आदि हँसने लगे और उनके मुँह से निकल पड़ा कि अन्धे के अन्धा ही हुआ।

दुर्योधन भीम आदि की यह बात सुनकर बहुत क्रोधित हुआ और मन मसोस कर रह गया। अब भीम ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला कि मैं आपको सभा भवन दिखला देता हूँ। दुर्योधन ने समझा कि यह मेरी हँसी कर रहा है, इसलिये हाथ छुड़ाकर फिर स्वयं ही देखने लगा। एक जगह संगमरमर के एक खुले हुए द्वार को बन्द समझ कर वह हाथ से धक्का देकर खोलने लगा। तो मुंह के बल आगे गिर पड़ा। भीम ने उसे झट उठा लिया। दुर्योधन उस दिन बहुत लज्जित हुआ।

जुआ खेलना

दुर्योधन पाण्डवों से पहले ही जला करता था। अब वह इनके ऐश्वर्य और प्रताप को देखकर और भी जलने लगा। सभा-भवन में अपनी हंसी से उसे पाण्डवों पर क्रोध भी आ रहा था। वह दिन-रात उनका बदला लेने के उपाय सोचने लगा।

उसने अपने मामा शकुनि से सलाह की कि पाण्डवों को विजय करना सरल काम नहीं है, इसलिये उन्हें कपट से ही विजय करना होगा। शकुनि बोला–मुझे जुआ खेलने की विद्या अच्छी याद है। आप युधिष्ठिर को जुआ खेलने का

निमन्त्रण दें। उन्हें भी जुआ खेलने का व्यसन है, पर वे इस विद्या में पूरे निपुण नहीं है और धर्मपूर्वक खेलते हैं। मैं उन्हें अवश्य हरा दूंगा। दुर्योधन को शकुनि की बात समझ में आ गई और उन दोनों ने धृतराष्ट्र से कहा कि आप युधिष्ठिर को जुआ खेलने का निमन्त्रण देकर यहाँ बुला लें। धृतराष्ट्र ने उसे बहुत समझाया कि पाण्डवों से बैर करना अच्छा नहीं, वे भी तुम्हारे भाई ही हैं। मैं तो बलवानों के साथ विरोध करना किसी प्रकार भी अच्छा नहीं समझता, क्योंकि इससे कुल का नाश हो जाता है।

जब दुर्योधन नहीं माना, तब महाराजा धृतराष्ट्र ने विदुर को भेज कर युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिये बुलाया। युधिष्ठिर ने विदुर से कहा—जुआ खेलना तो मुझे कल्याणकारी नहीं जान पड़ता। वह तो केवल झगड़े-बखेड़े की ही जड़ है। ऐसा कौन भला आदमी होगा, जो जुआ खेलना पसन्द करेगा? विदुर जी बोले—मैं यह भली-भाँति जातना हूँ कि जुआ खेलना सारे अनर्थों का मूल है। मैंने इसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफलता न मिली।

इच्छा न होते हुए भी विवश होकर युधिष्ठिर सब भाइयों और द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर चले गये। जुआ प्रारम्भ हुआ। उस समय धृतराष्ट्र के साथ बहुत-से राजा वहाँ आकर बैठ गये। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुर जी भी बैठे थे, किन्तु उनके मन में बड़ा खेद था।

युधिष्ठिर और शकुनि जुआ खेलने लगे। शकुनि बड़ा धूर्त था। उसने कपट से युधिष्ठिर का सब राज-पाट जीत लिया। उसके बाद युधिष्ठिर अपने भाइयों को भी हार गया, फिर अपने को भी हार गया। अब युधिष्ठिर के पास दांव पर लगाने को जब कुछ न रहा, तो उन्होंने द्रौपदी को ही दांव पर लगा दिया। शकुनि ने द्रौपदी को भी जीत लिया। इस बात से दुर्योधन को बहुत हर्ष हुआ और वह खुशी के मारे उछलने लगा।

द्रौपदी का अपमान

दुर्योधन ने द्रौपदी को सभा-भवन में बुलाने के लिये कई बार आदमी भेजे, पर वह नहीं आई। अन्त में उसने अपने छोटे भाई दुःशासन को भेजा। दुःशासन क्रोध में भर कर द्रौपदी के बाल पकड़ कर उसे सभा में घसीट लाया। सभा में जितने पूज्य और धर्मात्मा गुरुजन बैठे थे, सबने सिर नीचा कर लिया।

दुर्योधन द्रौपदी से कहने लगा—तुमको तुम्हारे पतियों ने जुए में हार दिया

है। अब तुम हमारी दासी हो। हमारे पास आकर बैठो। द्रौपदी यह सुनकर रोने लगी। कर्ण बोला—पाण्डव और द्रौपदी जुए में जीते गये हैं। इनके वस्त्र उतार लेने चाहियें। पाण्डवों ने तो अपने वस्त्र उतार दिये, किन्तु द्रौपदी तो स्त्री थी वह कैसे उतार सकती थी! दुःशासन उसके वस्त्र खींचने लगा। पाण्डव लोग कौरवों के इस व्यवहार से मन में तो बहुत क्रुद्ध हुए, परन्तु जुए में हार चुके थे, इसलिये चुप बैठे थे। क्योंकि द्रौपदी पर अब उनका अधिकार नहीं रहा था।

द्रौपदी अपने को निस्सहाय समझ कर जोर-जोर से रोने लगी। धृतराष्ट्र ने दुःशासन को ऐसा करने पर बहुत धमकाया, वह लज्जित होकर बैठ गया। परमात्मा की कृपा से द्रौपदी की लाज बच गई।

भीम की प्रतिज्ञा और पाण्डवों को छुटकारा

सभा में द्रौपदी का अपमान देखकर भीम क्रोध से कांपने लगा। उन्होंने अपनी गदा को कई बार उठाना चाहा, किन्तु धर्मात्मा युधिष्ठिर उनको रोकते रहे। अन्त में भीम अपने क्रोध को न संभाल सके और खड़े होकर बोले—

हे सभासदो! आपके सामने मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि जिस भुजा से दुःशासन ने द्रौपदी का वस्त्र खींचा है जब तक उसे मैं उखाड़ कर न फेंक दूंगा और इस पापी की छाती से खून न पी लूँगा, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।

जब दुर्योधन द्रौपदी को अपनी बायीं जंघा दिखाकर हँसने लगा तो भीम ने क्रोध में भरकर आवेश पूर्ण स्वर में कहा—**अरे दुष्ट! मैं तेरी इस जंघा को अपनी गदा से तोड़ डालूँगा।**

सभा में जब उत्पात होने लगा, तब महात्मा विदुर के धमकाने और गान्धारी के समझाने से धृतराष्ट्र बोले—**हे द्रौपदी! तुमको मैं आज्ञा देता हूँ कि अब तुम स्वतन्त्र हो और जो भी चाहो तीन वर माँग लो।**

द्रौपदी ने एक वर से युधिष्ठिर को छुटकारा दिलाया और दूसरे वर से शेष चारों भाइयों को छुटकारा दिलाया। जब तीसरा वर माँगने को धृतराष्ट्र ने कहा तो वह बोली—पाण्डव ईश्वर की कृपा से सब प्रकार से समर्थ हैं, इसलिये मुझे तीसरा वर नहीं चाहिये।

धृतराष्ट्र ने कहा कि अब तुम और पाँचों पाण्डव यहाँ से जाओ और पहले के समान इन्द्रप्रस्थ पर राज्य करो। युधिष्ठिर आदि सब गुरुजनों को प्रणाम

करके चल पड़े।

दूसरी बार जुआ

जब पाण्डव इन्द्रप्रस्थ जा रहे थे, तब दुःशासन ने दुर्योधन के कान में कहा—पाण्डव तो जा रहे हैं, अवसर पाकर ये हमें जीता नहीं छोडेंगे। दुःशासन की बात सुनकर दुर्योधन धृतराष्ट्र से फिर बोला—आप एक बार फिर जुआ खेलने की आज्ञा दीजिये। इस बार जो हारे वह बारह वर्ष तक वन में रहे। भीष्म, विदुर, द्रोण, कृप और अश्वत्थामा आदि ने बहुत समझाया कि अब जुआ नहीं होना चाहिये। किन्तु धृतराष्ट्र दुर्योधन से डरता था, इसलिये उसने फिर जुआ खेलने की आज्ञा दे दी।

युधिष्ठिर के पास फिर निमन्त्रण भेजा गया और वह जुआ खेलने के लिए फिर सभा-भवन में आ गए। शकुनि युधिष्ठिर से कहने लगा—आइये, इस वार ऐसा जुआ खेलें कि जो हार जाए वह अपने भाइयों के साथ बारह वर्ष प्रकट और एक वर्ष छिपकर वन में रहे। यदि उस एक वर्ष में वह देख लिया जाए, तो उसे फिर बारह वर्ष के लिए वन में रहना होगा। युधिष्ठिर ने यह बात भी स्वीकार कर ली। जुआ आरम्भ हुआ और युधिष्ठिर हार गए।

इस बार भी युधिष्ठिर की हार से दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें मृगचर्म देकर कहने लगा—इसे पहन कर तुम वन में जाओ।

पाण्डव मृगचर्म धारण कर, सब सभासदों को प्रणाम करके वन में चलने लगे। भीम की चाल हाथी के समान थी। दुर्योधन उसकी नकल करके पीछे-पीछे चला। भीमसेन से यह सहा नहीं गया। उसने प्रतिज्ञा की—दुर्योधन! मैं रणभूमि में तेरे सिर पर लात मारूँगा। तेरी जंघा तोडूंगा। तेरे भाइयों को मारूँगा और दुःशासन की छाती का खून पीऊँगा। अर्जुन ने कर्ण को मारने की और सहदेव ने शकुनि को मारने की प्रतिज्ञा की। युधिष्ठिर और नकुल ने भी कौरवों के नाश की प्रतिज्ञा की।

विदुर जी के कहने से युधिष्ठिर ने माता कुन्ती को विदुर के घर पर ही छोड़ दिया और द्रौपदी को साथ लेकर पाँचों भाई वन को चल पड़े। मृगचर्म पहन कर उनको जाता देखकर सब सज्जनों की आंखों से आँसुओं की धारा बह चली।



बाल महाभारत

3. वन-पर्व

पाण्डवों का वनवास

जब हस्तिनापुर की प्रजा को पाण्डवों के वन जाने का समाचार मिला, तो उसके दुःख का पारावार न रहा। सब लोग शोक से व्याकुल होकर भीष्म और द्रोणाचार्य आदि की निन्दा करने लगे। इसके बाद वे पाण्डवों के पास जाकर बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर कहने लगे—पाण्डवो! आप लोग हमें हस्तिनापुर में दुःख भोगने के लिए छोड़कर स्वयं कहाँ जा रहे हो? आप लोग जहाँ जायेंगे, वहीं हम भी चलेंगे। कहीं दुरात्मा दुर्योधन के कुराज्य में हमारा सर्वनाश न हो जाये!

प्रजा की बात सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिर बोले—वास्तव में हम लोगों में कोई गुण नहीं है, फिर भी आप लोग स्नेह के कारण हममें गुण देख रहे हैं, यह बड़े सौभाग्य की बात है। मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि आप हमारी बात स्वीकार करें। आप लोग बहुत दूर तक आ गए हैं, अब आगे न चलें। इस प्रकार समझा-बुझा कर युधिष्ठिर ने उन्हें लौट जाने को कहा।

जिस समय लौटने के लिए उनसे कहा गया, उस समय प्रजा के लोग हाय! हाय! पुकार उठे। पाण्डवों के गुण और स्वभाव आदि का स्मरण करते हुए इच्छा न रहने पर भी पाण्डवों के आग्रह से वे लौट पड़े।

पाण्डव चलते-चलते काम्यक वन में पहुँच गए और कन्द-मूल-फल खाते हुए रात और दिन बिताने लगे।

धृतराष्ट्र की चिन्ता

जब पाण्डव वन में चले गए, तब धृतराष्ट्र के मन में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई। धर्मात्मा विदुर को बुलाकर वे कहने लगे—भाई विदुर! तुम राजनीति और धर्म को ठीक-ठीक समझते हो, इसलिए अब कोई ऐसा उपाय बताओ कि

जिससे कौरव-पाण्डव दोनों का हित हो और पाण्डव भी क्रोधित होकर हम लोगों की कोई हानि न कर सकें।

विदुर ने कहा—राजन्! राज्य की जड़ धर्म है। आप धर्मपर्वूक पाण्डवों की और अपने पुत्रों की रक्षा कीजिये। आपके पुत्रों ने शकुनि की सलाह से भरी सभा में पाण्डवों का तिरस्कार किया है। युधिष्ठिर को कपट से हराकर उनका सर्वस्व छीन लिया है। इस पाप को दूर करने का एक ही उपाय है कि आपने पाण्डवों का जो कुछ छीन लिया है, वह सब उन्हें दे दिया जाए। यह काम आपके लिए अति श्रेयस्कर है कि आप पाण्डवों को सन्तुष्ट करें और शकुनि का अपमान करें। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो सारे कुरुवंश का नाश हो जाएगा। यदि दुर्योधन पाँड़वों के साथ रहना स्वीकार कर ले तब तो ठीक है, नहीं तो प्रजा के सुख के लिऐ उसे कैद करके युधिष्ठिर को राज-सिंहासन पर बैठा दीजिये।

विदुर की इस प्रकार की धर्म की बातें सुनकर क्रुद्ध हो, धृतराष्ट्र बोले—विदुर! यह तुम क्या कह रहे हो? तुम पाण्डवों का हित चाहते हो और मेरे पुत्रों का अहित। मेरे मन में तुम्हारी बातें नहीं बैठतीं। तुम बार-बार पाण्डवों के पक्ष की बातें कहते हो। मुझे अब तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो, अथवा जहाँ चाहो चले जाओ।

धृतराष्ट्र की यह दशा देखकर विदुर ने कहा—अब कुरुकुल का नाश अवश्यम्भावी है। ऐसा कह कर वह राजधानी छोड़कर पाण्डवों के पास काम्यक वन में चले गए। बाद में धृतराष्ट्र को अपनी भूल का महान् पश्चात्ताप हुआ और वह पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगे। फिर उसने संजय से कहा—हे संजय! मेरा प्यारा भाई विदुर मेरा परम हितैषी और धर्म की साक्षात् मूर्ति है। मैंने क्रोधवश अपने निरपराध भाई को निकाल दिया है। तुम शीघ्र जाकर उसे लिवा लाओ। धृतराष्ट्र की आज्ञा से संजय काम्यक वन में गए। वहाँ जाकर उन्होंने विदुर से धृतराष्ट्र का समाचार कहा और हस्तिनापुर वापिस चलने के लिए प्रार्थना की। विदुर जी ने पाण्डवों से अनुमति ली और फिर हस्तिनापुर लौट आए। विदुर जी से मिलकर धृतराष्ट्र को बड़ी प्रसन्नता हुई।

किर्मीर का वध

जब पाण्डवों ने वनवास के लिए हस्तिनापुर से प्रस्थान किया, उस समय वे निरन्तर तीन दिन तक चलते ही रहे। जिस मार्ग से ये काम्यक वन में प्रवेश करना चाहते थे, आधी रात के समय उस मार्ग को रोककर किर्मीर नामक राक्षस

खड़ा हो गया। वह अति बलिष्ठ और भयंकर था। उसी समय वह पाण्डवों के पास आकर खड़ा हो गया।

पाण्डवों का परिचय जानकर किर्मीर ने कहा कि मैं वकासुर का भाई और हिडिम्ब का मित्र हूँ। इसी भीमसेन ने उनको मारा है। मैं इसी की खोज में था, आज अच्छा अवसर मिला है। मैं उसे अभी यमलोक भेज देता हूँ।

उसकी बात सुनकर भीमसेन ने उसी समय एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ा और उसके सिर पर दे मारा। परन्तु इससे राक्षस को कोई घबराहट नहीं हुई। उसके बाद दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। भीमसेन ने उसको जमीन पर गिरा दिया, और उसकी कमर घुटनों से दबाकर गला घोंट दिया। उसकी आँखें बाहर आ गईं और उसके प्राण निकल गए। किर्मीर राक्षस के मर जाने पर पाण्डव अति प्रसन्न हुए।

श्रीकृष्ण जी का काम्यक वन में आगमन

पाण्डवों के वन में चले जाने का समाचार शीघ्र ही सर्वत्र फैल गया। दूर-दूर से युधिष्ठिर के मित्र राजा उनसे मिलने के लिऐ काम्यक वन में आए। सब राजा श्रीकृष्णजी को अपना नेता बनाकर युधिष्ठिर के चारों और बैठ गए। श्रीकृष्ण जी आदि ने पहिले युधिष्ठिर को प्रणाम किया। उसके बाद श्रीकृष्ण जी बोले–हे पृथ्वी वालो! अब यह बात निश्चित हो गई है कि पृथ्वी दुरात्मा दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन का खून पीएगी। जो मनुष्य किसी को धोखा देकर स्वयं सुख भोग रहा हो, उसे मार डालने में कोई अधर्म नहीं। अब हम लोगों का कर्त्तव्य है कि हम इकट्ठे होकर कौरवों और उनके मित्रों को युद्ध में मार डालें और युधिष्ठिर को सिंहासन पर अभिषिक्त कर दें।

श्रीकृष्णजी की बातें सुनकर अर्जुन ने उनकी प्रशंसा की। इसके बाद द्रौपदी श्रीकृष्णजी के पास आकर कहने लगी–हे श्रीकृष्णजी! कौरवों की भरी सभा में मुझको घसीटा गया, यह कितने दुःख और अपमान की बात है! भीम और अर्जुन भी मेरी रक्षा नहीं कर सके, धिक्कार है इनके बल-पौरुष को! दुर्योधन के कई बार पाण्डवों और भीमसेन के नाश करने के उपाय किये। मुझ सती की चोटी पकड़कर दुःशासन ने भरी सभा में घसीटा और ये पाण्डव देखते रहे। ये बातें कहते-कहते द्रौपदी की आंखों में आंसू की धारा बह चली। वह अपना मुख ढक कर रोने लगी। इसके बाद श्रीकृष्ण जी से द्रौपदी ने अपनी रक्षा और

सहायता की प्रार्थना की।

द्रौपदी का रुदन सुनकर श्रीकृष्णजी ने उसे सहायता का वचन दिया और धैर्य धारण करने के लिए कहा।

इसके बाद श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर से कहा—राजन्! यदि उस समय मैं द्वारका में होता तो आपको इतना दुःख नहीं उठाना पड़ता। मैं जुए के अनेक दोष दिखाकर जुए के इस अनर्थ को रोक देता। यदि वे मेरी हित की बात स्वीकार नहीं करते तो मैं बलपूर्वक उन्हें दण्ड देता। उस समय मेरे द्वारका में न रहने से ही आपने जुआ खेलकर घर बैठे विपत्ति बुला ली है।

युधिष्ठिर के पूछने पर श्रीकृष्णजी ने बताया कि आपके राजसूय-यज्ञ में जब मैंने शिशुपाल को चक्र से मार डाला था, तो वह समाचार सुनकर उसके मित्र शाल्व ने द्वारका पर चढ़ाई कर दी थी। मैं उसे मारने के लिए समुद्र के एक भयानक द्वीप में चला गया था। उसके बाद जब मैंने आपके जुए में हारने का वृत्तान्त सुना, तभी मैं वहां से चल पड़ा और हस्तिनापुर होकर यहाँ आया हूँ। उसके बाद सब राजा-महाराजा और श्रीकृष्ण जी वहाँ से लौट गए।

द्रौपदी और युधिष्ठिर का संवाद

एक दिन सायंकाल वनवासी पाण्डव कुछ शोकग्रस्त से होकर द्रौपदी के साथ बैठे बातचीत कर रहे थे। द्रौपदी कहने लगी—सचमुच दुर्योधन बड़ा क्रूर और दुरात्मा है। हम लोगों को दुःखी देखकर उसे तनिक भी तो दुःख नहीं होता। उसने हम लोगों को मृगछाल ओढ़ाकर घोर जंगल में भेज दिया, परन्तु उसे रत्ती भर भी पश्चात्ताप नहीं हुआ। आप लोगों के पहले दिन देखकर, अब मैं ये दिन देखती हूँ तो रोने लगती हूँ। आप लोगों की क्या दशा हो रही है? मेरी दशा भी आप देख रहे हैं, फिर आपको उस पर क्रोध क्यों नहीं आता?

युधिष्ठिर ने कहा—मनुष्य को क्रोध के वश में न होकर, क्रोध को अपने वश में करना चाहिये। जिसने क्रोध पर विजय प्राप्त करली, उसका कल्याण हो गया। क्रोध के कारण मनुष्य का नाश हो जाता है। क्रोध दोषों का घर है। इसलिये क्षमा से ही काम लेना चाहिये।

इसके बाद द्रौपदी ने पाण्डवों को प्रोत्साहित करते हुए कहा कि महाराज! क्या वन में रहना आपको अच्छा लगता है। आपके चारों भाई आपकी आज्ञा की ही प्रतीक्षा में हैं, नहीं तो इनकी क्रोध की अग्नि में कौरव तृण के समान जल जाते। महा बलवान् पाँचों पाण्डवों की स्त्री होकर में धूल में सोती हूँ और

पैदल पहाड़ों और वनों में घूमती फिरती हूँ। क्या आपको हमारी इस दशा को देखकर क्रोध नहीं आता।

द्रौपदी के वचन सुनकर युधिष्ठिर बोले—मैं धर्म के बन्धन में बँधा हूँ। प्राण रहते मैं सत्य नहीं छोड़ सकता। जो वचन हम जुए में हार चुके हैं, उनको पूरा कर लेने के बाद तुम हमारे बल, विक्रम और क्रोध को देख लेना।

इसी प्रकार प्रतिदिन इनकी बातें होती रहती थीं।

अर्जुन का अस्त्र-शस्त्र सीखना

एक दिन घूमते-घूमते श्री व्यास जी पाण्डवों के पास पहुँचे। पाण्डवों ने उनका यथायोग्य आदर-सत्कार किया। इसके बाद व्यास जी ने कहा—यह बारह वर्ष का समय आलस्य में मत खोओ। हिमालय पर्वत पर बड़े-बड़े धनुर्धर और युद्धविद्या के पूर्ण ज्ञाता देवता निवास करते हैं। अर्जुन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर, उनसे युद्ध विद्या के सब रहस्य सीख ले और अस्त्र-शस्त्र चलाने का उत्तम ज्ञान प्राप्त करले।

यह कहकर व्यास जी चले गये। युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन हिमालय पर गये और ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर वे वहाँ अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखने लगे। अर्जुन की गुरुभक्ति और सेवा से प्रसन्न होकर सब देवताओं ने उनको युद्ध की सब विद्या और अस्त्र-शस्त्र की सब विधियाँ सिखा दीं। थोड़े समय में ही अर्जुन धनुर्विद्या के पूर्ण ज्ञाता और प्रसिद्ध धनुर्धर हो गये।

एक बार इन्द्र ने राक्षसों के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में उसने अर्जुन से भी सहायता माँगी। अर्जुन ने युद्ध में राक्षसों को पराजित कर दिया। बहुतों को तो मार डाला और बहुत-से अपने प्राण लेकर भाग गये। अर्जुन की इस वीरता से इन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुन को पाशुपत आदि कई बड़े उपयोगी अस्त्र दिये और उनके प्रयोग करने की विधि भी बता दी।

पाण्डवों की तीर्थ यात्रा

द्वैतवन के बाद पाण्डव फिर काम्यक वन में आ गये थे। अर्जुन जब अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखने हिमालय पर चले गये, तब कुछ समय तक तो पाण्डव काम्यक वन में ही रहे, उसके बाद एक दिन लोमश ऋषि ने आकर उनसे कहा—यहाँ बैठे-बैठे क्या करोगे? चलो तीर्थयात्रा करें और नदी, पर्वत, समुद्र-तट और वनों में भ्रमण करके ईश्वर की सुरम्यरचना को देखें। और योगी, साधु और

विद्वानों की संगति से लाभ उठावें।

लोमश ऋषि की बात मान कर पाण्डव उनके साथ यात्रा के लिए चल पड़े। भ्रमण करते हुए वे गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। धर्मशास्त्रों की चर्चा और ऋषि-मुनियों का सत्संग करते हुए वे वहीं रहने लगे। एक दिन द्रौपदी ने नदी में बहता हुआ एक कमल का सुन्दर फूल देखा। फूल में से बड़ी अच्छी सुगन्ध आ रही थी। द्रौपदी ने भीम से कहा कि—तुम मेरे लिए ऐसे और फूल ला दो। भीम ने समझा कि यह फूल किसी समीप के स्थान से ही बहकर आया होगा, इसलिये वह युधिष्ठिर से बिना पूछे ही नदी के चढ़ाव की ओर चल दिये। चलते-चलते वे बहुत दूर चले गये और मानसरोवर तट पर पहुँच गये। मानसरोवर में वैसे बहुत फूल खिल रहे थे। परन्तु उस सरोवर की रक्षा के लिए बहुत से रक्षक नियुक्त थे। भीमसेन रक्षकों से लड़कर फूल तोड़ लाये।

इधर युधिष्ठिर ने जब भीमसेन को नहीं देखा, तब वे उनकी ढूंढ में निकले। द्रौपदी से फूल की बात जानकर युधिष्ठिर भी उत्तर की ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भीम को एक शिला पर बैठे देखा। भीम को पाकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। मार्ग के वनों में भीमसेन ने कई राक्षसों का वध भी कर दिया।

श्रीकृष्ण जी का आगमन

पाण्डव सब तीर्थों के दर्शन करते हुए आगे बढ़ने लगे। इसी समय श्रीकृष्ण और बलराम ने सुना कि महाराज युधिष्ठिर प्रभास क्षेत्र में उग्र तपस्या कर रहे हैं। तो वे अपने साथियों सहित उनके समीप पधारे। दोनों ने एक-दूसरे का यथोचित आदर-सत्कार किया। इसके बाद श्रीकृष्ण जी कहने लगे—

महाराज युधिष्ठिर! पृथ्वी के सब राजा लोग आपकी सहायता के लिए तैयार हैं। दुर्योधन के पाप और अधर्म ने सबकी दृष्टि में उसे गिरा दिया है। यदि आप आज्ञा दें, तो हम सब मिलकर दुर्योधन का नाश कर दें और हस्तिनापुर के राज्य पर आप को आसीन कर दें।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—माधव! आप जो कुछ कह रहे हैं, उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। जब आप पराक्रम दिखाने का समय समझेंगे, उसी समय आप दुर्योधन पर विजय प्राप्त कर सकोगे। अब आप अपने-अपने घरों को जाइये। आप लोग मुझसे मिलने के लिए यहाँ आए, इसके लिए मैं

आपका कृतज्ञ हूँ। आप धर्म का पालन करें, मैं फिर आप सबको एकत्रित हुए देखूँगा। इसके बाद श्रीकृष्ण जी आदि अपने घरों को वापिस लौट गये।

कौरवों की पाण्डवों पर चढ़ाई

तीर्थयात्रा करने के बाद पाण्डव फिर द्वैतवन में आकर सुन्दर सरोवर के तट पर रहने लगे। इन्हीं दिनों एक ब्राह्मण इस वन से धृतराष्ट्र के पास पहुँचा। धृतराष्ट्र के पूछने पर उसने बताया कि—इस समय पाण्डव बड़ा भीषण कष्ट सह रहे हैं, इनके शरीर बहुत कृश हो गए हैं, द्रौपदी की तो कुछ बात ही मत पूछिये।

उससे पाण्डवों का समाचार सुनकर धृतराष्ट्र को बड़ा दुःख हुआ और वह दुर्योधन आदि की निन्दा करने लगा। धृतराष्ट्र की बातें सुनकर शकुनि ने दुर्योधन और कर्ण के पास जाकर वे सब बातें सुनाई और कहा कि—मेरा विचार है कि तुम खूब ठाट-बाट से वहाँ चलो और पाण्डवों को समाप्त करो।

दुर्योधन ने कहा—द्वैतवन में हमें किस बहाने से जाना चाहिए? कर्ण ने कहा कि वहाँ हमारी गौशाला है, उसी को देखने के बहाने हम वहाँ जायेंगे। यह बात सबको पसन्द आ गई और वे धृतराष्ट्र के पास आज्ञा लेने के लिए गए।

धृतराष्ट्र को मालूम था कि उसी वन में पाण्डव भी ठहरे हुए हैं, इसलिए पहले तो उसने वहाँ जाने की आज्ञा नहीं दी, किन्तु दुर्योधन के आग्रह के आगे उसकी चल ही क्या सकती थी? अन्त में उन्हें आज्ञा देनी ही पड़ी।

धृतराष्ट्र से आज्ञा पाकर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि एक बड़ी सेना के साथ द्वैतवन में पहुँच गए। वहाँ उन्होंने एक सरोवर के तट पर अपना डेरा जमाया। सरोवर की रक्षा गन्धर्वों के सैनिक करते थे। यह सरोवर गन्धर्वों का ही था। उन सैनिकों को दुर्योधन के सैनिकों ने मार डाला। यह देखकर गन्धर्वों और दुर्योधन की सेना में युद्ध होने लगा। युद्ध में दुर्योधन की पराजय हुई। कर्ण को मुँह की खानी पड़ी और दुर्योधन को गन्धर्वों ने बन्दी बना लिया।

अपनी यह दशा देखकर दुर्योधन ने पाण्डवों की शरण में अपना एक दूत भेजा। धर्मराज युधिष्ठिर ने जब कौरवों की यह दशा सुनी, तब उन्होंने भीम और अर्जुन को उनकी सहायता करने को वहाँ जाने के लिए कहा। भीम को दुर्योधन की दशा सुनकर प्रसन्नता हुई। युधिष्ठिर उनसे कहने लगे—देखो भाई! कौरव भी हमारे भाई हैं, उनकी अप्रतिष्ठा में हमारी भी अप्रतिष्ठा होती है। वैसे चाहे हम अलग-अलग हैं, किन्तु दूसरों के साथ विरोध होने पर हमें एक ही

हो जाना चाहिए। धर्म इसी में है कि तुम जाकर उन की सहायता करो।

युधिष्ठिर की आज्ञा से ये वहाँ गए। गन्धर्वों से युद्ध करके इन्होंने दुर्योधन को छुड़ाया। इसके बाद दुर्योधन युधिष्ठिर के पास आए और लज्जित होकर उन्हें प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने कहा तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। कुशलपूर्वक अपनी राजधानी में जाकर राज्य करो।

दुर्योधन अपने सब साथियों समेत वापिस हस्तिनापुर चला आया।

कर्ण की दिग्विजय

द्वैतवन से लौटकर दुर्योधन बड़ा चिन्तित रहने लगा। एक दिन भीष्म-पितामह ने उससे कहा कि यदि तुम अपना भला चाहते हो, तो अब भी पाण्डवों से सन्धि कर लो। जिस कर्ण पर तुमको घमण्ड है, उसका बल तो तुमने गन्धर्वों के युद्ध में देख ही लिया है। तुम पाण्डवों पर विजय कैसे पा सकोगे?

यह सुनकर कर्ण को क्रोध आया और वह दुर्योधन से कहने लगा—कि भीष्म सदा हमारी बुराई और पाण्डवों की प्रशंसा करते हैं। सब पाण्डवों ने मिलकर जिन देशों पर विजय पाई थी, मैं अकेला ही उन सबको अभी जीत कर आता हूँ। तब भीष्म को मेरे बल का पता चलेगा।

ऐसा कहकर कर्ण एक बड़ी सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। थोडे ही समय में चारों दिशाओं को जीतकर उसने उनसे कर प्राप्त कर लिया। वे धन, धान्य, हीरे, मोती और रत्न आदि से हाथी, घोड़ों को लाद कर हस्तिनापुर आये। दुर्योधन ने दिग्विजय करके आए कर्ण को देखकर उसका बड़ा आदर किया और बहुत प्रसन्न हुआ।

इसके बाद दुर्योधन ने भीं राजसूय-यज्ञ किया। यज्ञ में देश-विदेश के राजा-महाराजा आए। सबने दुर्योधन की अधीनता स्वीकार की। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

द्रौपदी का हरण

एक दिन पाण्डव कन्द-मूल-फल खाने के लिए वन में निकल पड़े। कुटी में द्रौपदी अकेली थी। उसी ओर अकस्मात् जयद्रथ भी आ निकला। द्रौपदी को अकेली देख, वह उसे रथ में बैठाकर भाग चला। द्रौपदी पाण्डवों का नाम ले-लेकर चिल्लाती ही रही।

कुछ देर वाद पाण्डव कुटी में आए। उन्होंने वहाँ द्रौपदी को न देखा, तो कुछ देर सोचने के बाद रथ की लीक के पीछे-पीछे भागे। जयद्रथ थोड़ी

ही दूर गया था कि भीम ने गरज कर कहा—हे दुष्ट, ठहर जा! तेरी मृत्यु पास आ गई है।

जयद्रथ सेना सहित खड़ा हो गया। पाण्डवों और जयद्रथ में घमासान युद्ध हुआ। पाण्डवों की मार से घबराकर जयद्रथ रथ से उतर कर भागने लगा। भीम ने उसके बाल पकड़कर पृथ्वी पर दे मारा और उसे अपनी लात से अब मारना ही चाहता कि युधिष्ठिर ने रोक दिया। वह बोले—दुःशला को विधवा मत करो। दुःशला जयद्रथ की स्त्री और दुर्योधन की बहिन थी।

भीम ने युधिष्ठिर की आज्ञा से उसे छोड़ दिया, किन्तु उसके सिर के आधे बाल और आधी मूँछ तलवार से मूँड़कर युधिष्ठिर के चरणों में डाल दिया।

जयद्रथ ने कहा—महाराज! मैं आपका दास हूँ। मुझे छोड़ दो। धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर ने उसे छोड़ दिया और वह उसी समय वहाँ से चला गया।

युधिष्ठिर की धर्म-परीक्षा

द्रौपदी के हरण के बाद पाण्डव लोग काम्यक वन को छोड़कर फिर द्वैतवन में आ गये। वहाँ वे सुखपूर्वक रहने लगे। एक दिन घूमते-घूमते वे एक वटवृक्ष के पास पहुँचे और भूख-प्यास से शिथिल होकर उसकी शीतल छाया में बैठ गये। तब धर्मराज ने नकुल से कहा—भैया! तुम्हारे ये सब भाई प्यासे और थके हुए हैं। यहाँ पास ही कहीं जल या वृक्ष हो तो देखो। नकुल बड़े भाई की आज्ञा पाते ही एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गये और इधर-उधर देखकर कहने लगे—राजन्! मुझे जल के पास खड़े बहुत-से वृक्ष दृष्टिगोचार हो रहे हैं, और सारसों का शब्द भी सुनाई दे रहा है, इसलिये वहीं जल होगा। तब युधिष्ठिर ने कहा—तुम शीघ्र जाओ और तरकसों में जल भर लाओ।

ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा पाकर नकुल तेजी से चले और जल्दी ही जलाशय के पास पहुँच गये। वहाँ निर्मल जल देखकर ज्यों ही वे पीने के लिये झुके कि यक्ष ने कहा—'नकुल! साहस न करो। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, उसके बाद जल पीना और ले जाना। नकुल को बड़ी प्यास लगी हुई थी, उसने यक्ष की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसने ज्योंही वह जल पिया कि वह भूमि पर गिर पड़ा। वह जलाशय यक्ष का था।

नकुल को देर हुई देख युधिष्ठिर ने सहदेव को भेजा। सहदेव की भी वही दशा हुई। फिर उन्होंने अर्जुन को भेजा और उसके बाद भीमसेन को। सबने वैसा ही किया और सब भूमि पर गिर पड़े।

महाराज युधिष्ठिर भीम को बहुत विलम्ब हुआ देखकर बड़े चिन्तित हुए। फिर वे स्वयं ही जाने को खड़े हो गये। जलाशय के तट पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि उनके चारों भाई भूमि पर गिरे पड़े हैं। उन्हें देख युधिष्ठिर बहुत शोकातुर हुए। वे सोचने लगे कि इन्हें किसने मारा है? इनके शरीर पर कोई आघात भी नहीं दीखता। कहीं दुर्योधन ने यह जलाशय विषैला तो नहीं करवा दिया, किन्तु यह जल भी निर्मल दिखाई देता है, इनके शरीर पर विष का भी कोई प्रभाव नहीं है।

इसी प्रकार अनेक संकल्प-विकल्प करके वे जल में उतरने को तैयार हुए। यक्ष ने उनसे कहा—कि मैंने ही तुम्हारे भाइयों के मारा है। यदि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दोगे, तो तुम्हारी भी यही दशा होगी। इसलिये तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दो, फिर जल पीना और ले भी जाना।

यक्ष एक वृक्ष के ऊपर बैठा था। युधिष्ठिर ने उससे कहा कि आप मुझसे प्रश्न कीजिये, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनके उत्तर दूँगा।

यक्ष ने पूछा—सूर्य को कौन उदित करता है? उसके चारों ओर कौन चलते हैं? उसे अस्त कौन करता है? और वह किसमें प्रतिष्ठित है?

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्म सूर्य को उदित करता है, देवता उसके चारों ओर चलते हैं। धर्म उसे अस्त करता है और वह सत्य में प्रतिष्ठित है।

यक्ष—ब्राह्मणों में देवत्व क्या है? उनमें सत्पुरुषों का-सा धर्म क्या है? मनुष्यता क्या है? और असत्पुरुषों का-सा आचरण क्या है?

युधिष्ठिर—वेदों का स्वाध्याय ही ब्राह्मणों में देवत्व है, तप सत्पुरुषों का-सा धर्म है, मरना मनुष्यता और निन्दा करना असत्पुरुषों का-सा आचरण है।

यक्ष—ऐसा कौन पुरुष है जो इन्द्रियों के विषय को अनुभव करते हुए, श्वास लेते हुए, बुद्धिमान् होकर भी वास्तव में जीवित नहीं है?

युधिष्ठिर—जो देवता, अतिथि, सेवक, माता-पिता और आत्मा-इनका पोषण नहीं करता, वह श्वास लेने पर भी जीवित नहीं है।

यक्ष—पृथ्वी से भारी क्या है? आकाश से ऊँचा क्या है? वायु से भी तेज चलने वाला क्या है और तिनकों से भी हलका क्या है?

युधिष्ठिर—माता भूमि से बढ़कर है, पिता आकाश से भी ऊँचा है, मन वायु से भी तेज चलने वाला है और चिन्ता तिनकों से भी हल्की है।

यक्ष—सोने पर पलक कौन नहीं मूँदता? उत्पन्न होने पर चेष्टा कौन नहीं करता? हृदय किसमें नहीं है और वेग से कौन बढ़ता है।

युधिष्ठिर—मछली सोने पर भी पलक नहीं मूँदती, अण्डा उत्पन्न होने पर भी चेष्टा नहीं करता, पत्थर में हृदय नहीं है और नदी वेग से बढ़ती है।

यक्ष—समस्त प्राणियों का अतिथि कौन है? सनातन धर्म क्या है? अमृत क्या है? और यह सारा जगत् क्या है?

युधिष्ठिर—अग्नि समस्त प्राणियों का अतिथि है? अविनाशी नित्य धर्म ही सनातन धर्म है, गौ का दूध अमृत है और वायु यह सारा जगत् है।

यक्ष—अकेला कौन विचरता है, एक वार उत्पन्न होकर पुनः कौन उत्पन्न होता है? शीत की औषधि क्या है और महान् क्षेत्र क्या है?

युधिष्ठिर—सूर्य अकेला विचरता है, चन्द्रमा एक बार जन्म लेकर पुनः जन्म लेता है, अग्नि शीत की औषधि है और पृथ्वी बड़ा भारी क्षेत्र है।

यक्ष—धर्म का मुख्य स्थान क्या है? यश का मुख्य स्थान क्या है? स्वर्ग का मुख्य स्थान क्या है और सुख का मुख्य स्थान क्या है?

युधिष्ठिर—धर्म का मुख्य स्थान दक्षता है, यश का मुख्य स्थान दान है, स्वर्ग का मुख्य स्थान सत्य है और सुख का मुख्य स्थान शील है।

यक्ष—उत्तम गुण क्या है? उत्तम धन क्या है? प्रधान लाभ क्या है और श्रेष्ठ सुख क्या है?

युधिष्ठिर—दक्षता उत्तम गुण है, शास्त्रज्ञान उत्तम धन है, आरोग्य प्रधान लाभ है और सन्तोष श्रेष्ठ सुख है।

यक्ष—लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है, नित्य फल वाला धर्म क्या है, किसको वश में रखने से शोक नहीं होता और किनके साथ की हुई सन्धि नष्ट नहीं होती।

युधिष्ठिर—दया श्रेष्ठ धर्म है, वेदोक्त धर्म नित्य फल वाला है, मन को वश में रखने से शोक नहीं होता और सत्पुरुषों के साथ की हुई सन्धि नष्ट नहीं होती।

यक्ष—उत्तम क्षमा क्या है? लज्जा किसे कहते है? तप का लक्षण क्या है और दम क्या कहलाता है?

युधिष्ठिर—द्वन्द्वों का सहना क्षमा है, न करने योग्य काम से दूर रहना लज्जा है, अपने धर्म में रहना तप है और मन का दमन दम है।

यक्ष—मनुष्यों का दुर्जय शत्रु कौन है? अनन्त व्याधि क्या है? साधु कौन माना जाता है और असाधु किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर—क्रोध दुर्जय शत्रु है, लोभ अनन्त व्याधि है, समस्त प्राणियों का

हित करने वाला साधु है और निर्दय पुरुष असाधु है।

इस प्रकार यक्ष के सब प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर युधिष्ठिर ने दे दिये। युधिष्ठिर से प्रसन्न होकर यक्ष ने उसके सब भाइयों को जीवित कर दिया। तदनन्तर एक क्षण में ही उनकी सब भूख-प्यास जाती रही। इसके बाद वे यक्ष से आज्ञा लेकर वहाँ से चल दिये।

एक दिन युधिष्ठिर ने मुनियों से कहा—हम बारह वर्ष तक तरह-तरह के कष्ट तथा कठिनाइयाँ को दसहते हुए वन में निवास करते रहे हैं। अब हमारे अज्ञातवास का तेरहवां वर्ष शेष है। इसके लिए आप हमें आज्ञा देने की कृपा करें।

मुनियों से आज्ञा लेकर पाँचों भाई धौम्य ऋषि और द्रौपदी के सहित खड़े हुए और वहाँ से चल दिये। एक कोस चलकर वे दूसरे ही दिन से अज्ञातवास आरम्भ करने के लिए आपस में परामर्श करने के हेतु वहीं बैठ गये।



बाल महाभारत

4. विराट-पर्व

पाण्डवों का विराट के राज्य में अज्ञातवास

परस्पर विचार करके युधिष्ठिर ने निश्चय किया कि मत्स्य देश का राजा विराट बहुत बलवान् है और हमारे वंश पर प्रेम भी रखता है, वह उदार धर्मात्मा और वृद्ध है। इसलिए विराट नगर में ही हम एक वर्ष तक निवास करें और राजा का कुछ काम भी करते रहें। हमारे लिए यही श्रेयस्कर होगा। यह विचार कर, वे वहीं जाकर रहने लगे और उन्होंने वहाँ रहते हुए अपने लिए एक-एक कार्य चुन लिया।

वनवास से चलकर द्रौपदी सहित पाँचों भाई विराट-नगर के पास पहुँच गए और वन में एक शमी वृक्ष के ऊपर अर्जुन् ने सबके अस्त्र-शस्त्र बाँधकर टाँग दिए। उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र साथ ले जाना ठीक नहीं समझा, क्योंकि भीम की गदा और अर्जुन का गाण्डीव धनुष पहिचाना जा सकता था। इसके बाद ये सब अपना-अपना वेष बदलकर विराटनगर में पहुँच गये।

सबसे पहिले युधिष्ठिर ब्राह्मण का वेष बनाकर विराट की सभा में गए। उनका तेज देखकर सब सभासद् दंग रह गए। युधिष्ठिर ने राजा से कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ और कुछ जीविका के लिए आपके पास आया हूँ। राजा ने पूछा—तुम क्या कर सकते हो?

बोले युधिष्ठिर—विप्र हूँ मैं, कंक मेरा नाम है,
वैयाघ्रपद मम गोत्र; चौसर खेल मेरा काम है।
था पूर्व मैं प्यारा सखा, भूपति युधिष्ठिर का रहा,
इस खेल से उनका हृदय आमोद से भरता रहा।।

विराट ने बड़ी प्रसन्नता से उनको रख लिया और वे छिपकर वहीं रहने लगे। इसके बाद भीम हाथ में चिमटा लेकर आए। भीम को देखकर विराट ने पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आए हो। फिर—

पा भृत्य के द्वारा सुपरिचय भीम नृपति-विचार से,
आगे बढ़े, ज्यों जा रहा हो नाग-शत्रु कछार से।
कहने लगे फिर निकट जा नतभाल भूप! प्रणाम है,
मैं सूपकार प्रवीण हूँ, श्रीमान्! वल्लव नाम है।।
अतिरिक्त इसके, हे नृपति! हूँ मल्ल भी सबसे बड़ा,
मैं भित्त सिंहों से युधिष्ठिर के यहाँ सन्तत लड़ा।
इस भाँति नृप ने भीम की जब कृति कुशलता जान ली,
कुछ योग्य सेवा सौंपने की बात मन में ठान ली।

इसके बाद द्रौपदी मलिन वस्त्रों में रानी के रनिवास में पहुँची। विराट की रानी का नाम सुदेष्णा था। वह कहने लगी—तुम कौन हो और यहाँ किस लिए आई हो। द्रौपदी बोली—मेरा नाम सैरन्ध्री है और मैं तुम्हारे आधीन रहकर कुछ कार्य करना चाहती हूँ। सुदेष्णा ने कहा कि तुम्हारे सौन्दर्य से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम कोई रानी या किसी अन्य बड़े कुल की हो, किन्तु तुम यहां प्रपंच रच रही हो। तब द्रौपदी बोली—

हूँ देवि! सैरन्ध्री कहाती, कथन मेरा सत्य है,
आश्रय हमारी वृत्ति का श्रृंगार सेवा-कृत्य है।
बनकर कृपापात्री, अगाध प्रमोदमद में बह चुकी।।
मैं सत्यभाषा द्रौपदी की पूर्व दासी रह चुकी,

बड़ी प्रसन्नता के साथ सुदेष्णा ने द्रौपदी को अपने रनिवास में श्रृंगार-सेवा के लिए रख लिया। उसके बाद सहदेव ग्वाले के वेष में पहुँचे। राजा के पूछने पर—

सहदेव बोले—था प्रथम मैं भूप युधिष्ठिर के यहाँ,
मैं धेनु-रक्षण-रूप में करता रहा सेवा वहाँ।
हाँ! आज वे गृह-हीन हैं, उनके बिना मैं दीन हूँ,
या लीजियेगा यों समझ, अब जल रहित मैं मीन हूँ।

राजा ने कहा—तुम ग्वाले प्रतीत नहीं होते हो। तुम तो कोई तेजस्वी ब्राह्मण या वीर क्षत्रिय प्रतीत हो रहे हो। सहदेव कहने लगे—आप भ्रम छोड़ कर मेरा विश्वास कीजिये और जो मेरा पहिला कार्य है, वही मुझे दे दीजिए। वहाँ मुझे सब लोग तन्तिपाल कहते थे। उनकी बात सुन कर राजा ने उन्हें गौशाला का काम सौंप दिया।

अब अर्जुन नपुंसक का वेष बनाकर राजा की सभा में पहुँचे। उनके शरीर

में पराक्रम की झलक मार रही थी। राजा ने विस्मित भाव से आदर के साथ उनको बुलाकर उनकी प्रशंसा करते हुए पूछा कि आप अपना पूरा परिचय दीजिये।

सुनकर वचन तब भूप के यों स्नेहयुत, करुणा पगे,
गम्भीर, सुस्थिर भाव से कौन्तेय यों कहने लगे—
'यह शब्द हे भूपाल!' भावित, भव्य, सन्तोषप्रद सभी,
यह आपकी महती कृपा मुझको न भूलेगी क़भी।।
मैं हूँ नपुंसक सत्य ही, यह आप निश्चय मानिये,
नर-राज! नाम 'बृहन्नला' इस दीन जन का जानिये।
मैं गान वाद्य-कला-कुशल, हे भूप। नर्तन-दक्ष हूँ,
है अधिक कहना व्यर्थ, मैं गन्धर्व सा प्रत्यक्ष हूँ।।
आजीविका से रहित और नितान्त आश्रय-हीन हूँ,
अज्ञातवासी पाण्डु सुत हैं, मैं प्रवासी दीन हूँ।
मैं पाण्डवों का दास, शिक्षक, द्रौपदी का था वहाँ,
तव भृत्य, शिक्षक उत्तरा का अब रहूँगा मैं यहाँ।।

अर्जुन की बात सुनकर राजा ने कहा कि उत्तरा की शिक्षा का तुम्हें पूर्ण अधिकार है और तुम यहाँ प्रसन्नता-पूर्वक रहो। उत्तरा राजा की लड़की का नाम था। इसके बाद नकुल पहुँचे। राजा के पूछने पर कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आए हो।

तब यों नकुल कहने लगे जय बोलकर भूपाल की,
मुझको यहाँ पर ला रही गति कुटिल काल कराल की।
अनुचर रहा मैं पाण्डवों का अश्वशाला में वहाँ,
कृपया मुझे सेवा वही अब दीजिए अपने यहाँ।।
थे नृप युधिष्ठिर पूर्णतः सन्तुष्ट मेरे काम से,
मुझको सप्रेम पुकारते थे, नित्य 'ग्रन्थिक' नाम से।
मत्स्येश बोले—'यदि तुम्हारे चित्त में भाती यही,
जिसमें तुम्हें अनुराग है, स्वीकार मुझको भी वही।।

अपने ज्येष्ठ भाइयों के समान नकुल भी वहाँ रहने लगें और राजा की अश्वशाला की देख-भाल करने लगे। जो पाण्डव कभी चक्रवर्ती राजा थे, आज वे एक छोटे से राजा के आधीन छिपकर अपने दिन काट रहे हैं। यह भाग्य की विडम्बना ही तो है।

शार्दूल बन्धन में बँधे, स्वातन्त्र्य-दान शृगाल को,
वायस चुगें मोती अहो। मिलता चुगा न मराल को।
इसमें नहीं सन्देह कुछ, यह वास्तविक है, तथ्य है,
हा! काल, तू जो कुछ कराले, सब मुझे सामर्थ्य है।।
यह सब कुटिल कराल काल की ही महिमा है।

जीमूत का वध

इस प्रकार जब पाण्डवों को विराट नगर में छिपकर रहते हुए तीन महीने हो चुके, तब वहाँ एक विशाल महोत्सव हुआ। उसमें सभी दिशाओं से हजारों पहलवान जुटे थे। वे सबके सब प्रसिद्धि प्राप्त बलवान् थे। उनमें एक पहलवान सबका शिरोमणि था। उसका नाम था जीमूत। जब वह अखाड़े में उतरा, तो किसी को उसके पास जाने की हिम्मत न होती थी। जब सब पहलवान उदास हो गए, तब राजा ने अपने रसोइये को उसके साथ भिड़ने की आज्ञा दी। राजा का सम्मान रखने के लिऐ भीमसेन सिंह के समान धीमी चाल से चलकर अखाड़े में आए। फिर उन्हें लंगोटा कसते देखकर वहाँ की जनता ने हर्षध्वनि की। दोनों में बड़ी देर तक मल्लयुद्ध होता रहा।

तदनन्तर जैसे सिंह हाथी को पकड़ लेता है, उसी प्रकार भीमसेन ने उछलकर जीमूत को दोनों हाथों से पकड़ लिया और ऊपर उठा कर उसे घुमाना आरम्भ किया। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ। भीम ने उसे सौ वार घुमाया, जिससे वह शिथिल और बेहोश हो गया। उसके बाद उन्होंने पृथ्वी पर पटक कर उसका कचूमर निकल डाला। भीम के हाथ से उस प्रसिद्ध पहलवान के मारे जाने से राजा विराट को बड़ी खुशी हुई।

इसी प्रकार राजा सबके कार्यों से प्रसन्न रहते थे।

कीचक का वध

विराट के यहाँ रहते हुए पाण्डवों को अब दस महीने बीत ही चुक थे। विराट की स्त्री सुदेष्णा के भाई का नाम कीचक था। वह राजा का सेनापति भी था। एक दिन वह द्रौपदी का सौंदर्य देखकर उस पर मोहित हो गया और उसने उसे अपनी पत्नी बनाना चाहा, उसने अपनी यह इच्छा द्रौपदी पर प्रकट की थी। उसकी इच्छा जानकर द्रौपदी उसे समझाने लगी—

सावधान हे वीर, न ऐसे वचन कहो तुम,
मन को रोको और संयमी बने रहो तुम।

है मेरा भी धर्म, उसे क्या खो सकती हूँ।
अबला हूँ, किन्तु न कुलटा हो सकती हूँ।
मैं दीना हीन हूँ सही, किन्तु लोभ-हीन नहीं,
करके कुकर्म संसार में, मुझको है जीना नहीं।
पर-नारी पर दृष्टि डालना योग्य नहीं है,
और किसी का भाग्य किसी को भोग्य नहीं है।
तुमको ऐसा उचित नहीं, यह निश्चय जानो,
निन्द्य कर्म से डरो, धर्म का भी भय मानो।

इसी प्रकार द्रौपदी ने उसे बहुत समझाया। जब कीचक किसी भी प्रकार न माना, तब वह अपनी बहिन सुदेष्णा से कहने लगा कि तुम ही कोई उपाय करो। पहिले तो सुदेष्णा ने मना कर दिया किन्तु अन्त में वह उससे डर कर उसकी बात मान गई। कीचक से तो बहिन क्या राजा भी डरते थे। एक दिन द्रौपदी सुदेष्णा के आग्रह से इच्छा न होते हुए भी एक चित्र देने के लिए कीचक के भवन की ओर गई। मार्ग में वह मन-ही-मन कहने लगी—

आ, विपत्ति आ, तुझसे नहीं डरती हूँ अब मैं,
देखें बढ़कर आप कि क्या करती हूँ अब मैं!
भय क्या है, भगवान आप ही मैं है मेरा,
निश्चय, निश्चय जिये हृदय, दृढ़-निश्चय तेरा।
मैं अबला हूँ तो क्या क्या हुआ? अबलों का बल राम है।
कर्मानुसार भी अन्त में, शुभ सबका परिणाम है।

इस प्रकार मन में विचारती हुई वह कीचक के भवन में पहुँच गई। चित्र देकर वह तत्काल चलने लगी, किन्तु उसे पकड़ कर कीचक फिर वही बात कहने लगा। द्रौपदी ने उसे बहुत समझाया, किन्तु जब वह नहीं माना, तब उस दुष्ट ने अपना हाथ छुड़ाने को उसने एक ऐसा झटका दिया कि वह मुँह के बल जमीन पर जा गिरा। रोती-बिलखती द्रौपदी विराट की सभा में गई। कीचक भी उसको मारने के लिए पीछे से उठकर भागा। सभा में पहुँचकर उसने द्रौपदी के एक लात ऐसी मारी कि वह बेचारी भूमि पर गिर पड़ी। युधिष्ठिर भी कंक बनकर वहाँ बैठे देख रहे थे, राजा भी थे, और सब सभासद् भी थे। सबने अरे-अरे करके उधर देखा ही था कि कीचक वहाँ से भाग गया।

द्रौपदी ने क्रोध में भरकर राजा को बहुत धमकाया और अन्त में यहाँ तक

कहा कि यदि तुम में शासन करने का सामर्थ्य नहीं है, तो इस गद्दी पर क्यों बैठते हो? द्रौपदी जब बहुत देर तक विलाप करती रही, तो युधिष्ठिर ने उसे समझा कर महलों में भेज दिया।

रात्रि के समय द्रौपदी भीम के घर में गई। वहाँ उसने भीम को अपनी सब दुःख-कथा सुनाई। यह सुन भीम ने उसे कीचक के वध करने का विश्वास दिला गया।

अगले दिन द्रौपदी बड़ी प्रसन्न-मुद्रा में थी। कीचक उसे कहने लगा कि अब भी तू मेरा कहना मान ले। द्रौपदी ने अपने मन के सब भाव छिपाकर उसे स्वीकृति दे दी और रात्रि के समय अपने घर में आने को कहा। वह प्रसन्न हो गया।

यथा-समय फिर यथा-स्थान वह उन्मत्त आया,
सैरन्ध्री की जगह भीम को उसने पाया।
पर वह समझा यही कि बस यह वही पड़ी है।
बड़े भाग्य से मिली आज यह नई घड़ी है।
झट लिपट गया वह भीम से, चपल चित्त के चाव में,
आ जाय वन्य पशु आप खिंच ज्यों अजगर के दाव में।
बस, पल भर में ही भीम ने उसे पीस डाला और वह उद्धत मारा गया।
हो चाहे जैसा भी प्रबल, यह अति निश्चित नीति है।
मारा जाता है शीघ्र ही, करता जो अनीति है।।

कीचक के मारे जाने से राजा और रानी द्रौपदी पर अप्रसन्न हो गये और उससे बोले—हे सैरन्ध्री! तू यहाँ से चली जा। द्रौपदी ने अति विनीत भाव से तेरह दिन और माँगे लिये। उसे फिर वहाँ रहने की आज्ञा मिल गई।

विराट नगर पर कौरवों की चढ़ाई

दुर्योधन ने चारों ओर अपने दूत भेज दिये थे कि कहीं पाण्डवों का पता लगाओ, वे जीवित हैं या नहीं? दूत वापिस आ गये और बोले—पाण्डवों का पता कहीं नहीं मिला, वे निश्चित ही मारे गये हैं।

इसी समय दुर्योधन के कीचक के मारे जाने का समाचार सुना। कीचक त्रिगर्त के राजा सुशर्मा पर पहले भी कई बार चढ़ाई कर चुका था। इसलिए विराट के साथ दुर्योधन और सुशर्मा का द्वेष था। दुर्योधन ने विराट से बदला लेने का यह अच्छा अवसर समझा। उसने सुशर्मा से कहा कि तुम विराट की

गौएं हर लाओ, पीछे से मैं भी आकर तुम्हारी सहायता करूंगा।

सुशर्मा बलवती सेना के साथ आया और विराट की गौएं छीनकर ले भागा। सहदेव ने राजा को सूचना भेज दी। विराट सेना लेकर चला। दोनों में युद्ध होने लगा। विराट की सेना हारकर भाग गई और सुशर्मा ने विराट को पकड़ कर बाँध लिया और उसे हस्तिनापुर की ओर ले चला। उसके बाद युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम उससे लड़ने गए और भारी युद्ध के बाद सुशर्मा को बाँधकर विराट के सामने ले आये। होश आने पर उसने विराट से क्षमा माँगी। विराट ने उसे मुक्त कर दिया।

इसके पश्चात् दुर्योधन, भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि और दुःशासन आदि वीरों को लेकर आया और उसने विराट नगर को चारों ओर से घेर लिया, और वहाँ की सब गौंओं को भी उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया।

यह देख गायों के चरवाहे राजा विराट के पुत्र उत्तर के पास आकर बोले कि—कौरवों की सेना ने आकर सब गायें छीन लीं, आप रक्षा कीजिये। उत्तर बोला—मेरे पास योग्य सारथी नहीं है, तुम किसी योग्य सारथि को ढूँढ कर लाओ।

अर्जुन के इशारा करने पर द्रौपदी ने उत्तर के पास जाकर कहा—बृहन्नला नाम का नपुंसक रथ चलाने की विद्या में बड़ा कुशल है। इसने अर्जुन से यह विद्या सीखी है। यदि तुम उत्तरा से कहो तो शायद यह उसके कहने से काम करना मान ले। उत्तरा के कहने से अर्जुन उसके सारथि बन गये और शमी के वृक्ष पर से अपने अस्त्र-शस्त्र लाकर उसके रथ पर बैठ गये। कौरवों के बड़े-बड़े महारथियों को देखकर उत्तरा घबरा गई।

कम्पित तथा रोमांचयुत तनु हो गया भयभीत का,
कोई हिमाचल-श्रृंग पर हो, ज्यों प्रभावित शीत का।

सब वीरता के भाव उसके चित्त से जाने लगे,
हाँ, प्रलय कैसे दृश्य उसकी दृष्टि में आने लगे।।

वैराट बोले—यदि यही है शत्रु-शैन्य बृहन्नले!
हम लोग निस्सन्देह तो फिर व्यर्थ ही मरने चले।

अब युद्ध कैसा! देखना भी है असम्भव-सा मुझे,
निज गात्र जंचता है निपट निर्जीव ही शव-सा मुझे।।

अर्जुन के समझाने से भी जब उसे कोई धैर्य नहीं हुआ, तो वह अपने हाथ

से धनुष-बाण फेंक और रथ से कूदकर भागने लगा। अर्जुन ने झट दौड़कर पीछे से उसकी चोटी पकड़ ली और बोले–

बोले किरीटी यों पलायन घोर निन्दित कर्म है,
जय-प्राप्ति वा तनु-त्याग केवल क्षत्रियोचित धर्म है।

यह कह हंसते हुए अर्जुन ने उसे रथ पर फिर ला बैठाया और बोले–यदि तुम युद्ध नहीं कर सकते, तो तुम सारथि बन जाओ। मैं तुम्हारी भी रक्षा करूंगा और कौरवों से युद्ध भी करता रहूंगा। जब उत्तर मानता ही नहीं था, तब उचित अवसर जानकर अर्जुन ने उसे अपना असली परिचय दे दिया। आज पाण्डवों का अज्ञातवास का एक वर्ष पूरा हो चुका था।

कौरवों के साथ युद्ध होने लगा और अर्जुन का पराक्रम देखकर सब आश्चर्य में डूब गये। बात की बात में कौरवों की सेना में खलबली मच गई। एक-एक करके सब अर्जुन से लड़े। कर्ण भी लड़ा, वह भी मूर्छित हो गया। उसके बाद अर्जुन भीष्म के सामने गए, उनकी भी ध्वजा अर्जुन ने एक ही बाण से काट गिराई, दुःशासन भी रथ से कूदकर भाग उठा। इसके पश्चात् कौरव सेना ने मिलकर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन के बाणों से सब भयभीत होकर चुपचाप रणक्षेत्र से भागने लगे।

इस प्रकार कौरवों को हराकर और विराट की गायें उनने छुड़ाकर अर्जुन जय मनाते हुए वापस आए। दूत ने जाकर जब राजा विराट को उत्तर के विजय का समाचार सुनाया, तो उसके आनन्द की सीमा न रही। वे बार-बार युधिष्ठिर से उत्तर की प्रशंसा करने लगे। युधिष्ठिर ने कहा–जिसका सारथि बृहन्नला हो, वह अवश्य युद्ध में विजयी होगा। विराट को यह बात अच्छी न लगी। किन्तु उसी समय उत्तर भी आकर विराट के पास उपस्थित हो गया। विराट ने उसे गले से लगाया। उत्तर युधिष्ठिर और अर्जुन आदि का असली परिचय विराट को बता दिया। राजा विराट उनका परिचय पाकर बड़े आश्चर्य में डूब गए और हर्ष से चिन्तित हो, युधिष्ठिर से बार-बार क्षमा मांगने लगे।

इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने विराट से कहा–हम लोग एक वर्ष तक छिपकर आपके यहाँ बड़े सुख से रहे हैं। इसलिए आपके बड़े कृतज्ञ हैं।

अभिमन्यु का विवाह

राजा विराट ने पाण्डवों से अपना सम्बन्ध और अधिक दृढ़ करने के लिए

महाराज युधिष्ठिर से प्रार्थना की कि वे अर्जुन का विवाह उसकी पुत्री उत्तरा से कर दें। उन्होंने कहा कि अर्जुन ने उत्तरा को नाच-गाना सिखाया है, इसलिए यह तो हमारे लिए पुत्री के समान है, धर्मशास्त्र यही कहते हैं। इसके साथ अर्जुन का विवाह नहीं हो सकता है। यदि आप हमारे साथ अपना सम्बन्ध बनाना चाहते ही है तो उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ हो सकता है। राजा विराट ने यह बात स्वीकार कर ली और अभिमन्यु का विवाह उत्तरा के साथ विधिपूर्वक सम्पन्न हो गया।

अभिमन्यु के विवाह में श्रीकृष्णजी द्वारका से बहुत-सा धन-धान्य लेकर आए थे। युधिष्ठिर और श्रीकृण के अनेक राजा-महाराजा भी इस विवाह में सहर्ष सम्मिलित हुए थे।



बाल महाभारत

5. उद्योग-पर्व

सन्धि के लिए प्रयत्न

अभिमन्यु का विवाह हो चुकने के पश्चात् विवाह में निमन्त्रित राजा लोग यह विचार करने लगे कि अब पाण्डवों को राज्य प्राप्ति के लिए क्या उपाय करना चाहिए। श्रीकृष्णजी ने कौरवों के अधर्म का चित्र सबके सामने खींचा और फिर पाण्डवों को युद्ध द्वारा ही राज्य प्राप्त करने की सम्मति दी। अब सब राजाओं का भी यही विचार हुआ।

श्रीकृष्णजी आदि यदुवंशी तो द्वारका चले गये। उसके बाद महाराजा द्रुपद का वृद्ध पुरोहित हस्तिनापुर भेजा गया। उसने भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर और दुर्योधन को यह कहा कि—पाण्डव लोग अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके हैं, अब उनका राज्य उन्हें दे देना चाहिए। पाण्डव युद्ध करना नहीं चाहते। वे धर्म के अनुसार अपना राज्य चाहते हैं। वन में उन्होंने अत्यन्त कष्ट सहे हैं, फिर भी उन्हें क्रोध नहीं है। आप लोग दुर्योधन को समझाकर आपस का विरोध मिटा दीजिए, जिससे कुल का कल्याण हो।

भीष्म जी ने पुरोहित की बात का समर्थन किया। किन्तु कर्ण को यह स्वीकार न हुआ। वह कहने लगा कि पाण्डव विराट और द्रुपद की छोटी-छोटी सेनाओं के बल पर ही कूद रहे हैं। मैं उन्हें युद्ध में अकेला ही काफी हूँ। दुर्योधन तो बिना युद्ध के तिल भर भूमि भी उन्हें नहीं देगा।

धृतराष्ट्र ने कर्ण को धमकाया और पुरोहित को समझाकर वापिस भेज दिया और उससे कहा कि तुमने हमारे कल्याण की ही बात कही है। मैं पाण्डवों के पास संजय को भेजूंगा।

इतनीं बात से ही युद्ध अवश्यम्भावी समझा गया और दोनों ओर युद्ध की तैयारी होने लगी। राजाओं को निमन्त्रण भेज दिये गये। कुछ राजा लोग तो आने भी लगे।

अर्जुन श्रीकृष्ण जी के पास सहायता माँगने के लिए द्वारका गए। उस समय श्रीकृष्ण जी सो रहे थे। दुर्योधन भी वहाँ पहुँचकर पहिले ही से उसके सिराहने की तरफ बैठे थे। वे भी सहयता माँगने आये थे। अर्जुन उनके पैरों की ओर बैठ गए। श्रीकृष्ण जी जागे, तो उन्होंने अर्जुन को सामने बैठे देखकर उनसे कुशल-क्षेम और आने का कारण पूछा। इतने ही में दुर्योधन बोल उठा—हे कृष्ण! पहिले में आया हूँ, इसलिए पहिले मुझसे आने का कारण पूछिये। श्रीकृष्ण जी ने कहा—मैंने जिसको पहिले देखा है वही मेरे लिए पहिले का है। फिर भी मेरे लिए तुम दोनों समान हो। अपने-अपने आने का कारण बताओ।

दोनों ने युद्ध में सहायता की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण जी बोले—एक ओर तो हमारी एक अक्षौहिणी सेना है और दूसरी ओर मैं अकेला हूँ। आप लोग जिसे लेना चाहें ले लें। **किन्तु मैं युद्ध में शस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा।** केवल युद्ध देखूँगा।

दुर्योधन ने कहा—तमाशा दिखाने के लिए हम आपको लेकर क्या करेंगे? हमें तो सेना चाहिए। सेना दुर्योधन को मिल गई और श्रीकृष्ण जी अर्जुन के हिस्से में आये।

श्रीकृष्ण जी को अपने पक्ष में पाकर अर्जुन बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें लेकर विराट नगर आ गए। उनके साथ सात्यकी आया, वह युद्ध-विद्या में अर्जुन का शिष्य था। युधिष्ठिर ने अपने मामा शल्य के पास भी दूत भेजा था। शल्य बड़े बलवान् थे और रथ चलाने में श्रीकृष्ण से कम नहीं थे। जब वह आ रहे थे, तो मार्ग में दुर्योधन ने उससे सहायता माँग ली और विराटनगर भी गए। शल्य द्वारा दुर्योधन को सहायता देने का वचन देने की बात युधिष्ठिर को ज्ञात हो गई तो उन्होंने शल्य से कहा कि आपने जो वचन दे दिया है, उसे अवश्य पूरा करें, युद्ध में आप कौरवों की ओर ही रहें। किन्तु एक काम हमारा भी करना। वह यह कि युद्ध में जब आप कर्ण के सारथि बनेंगे, उस समय आप उसके बल की निन्दा कर-करके उसका उत्साह कम करते रहना। शल्य ने इसे स्वीकार कर लिया।

श्रीकृष्ण का सन्धि के लिए प्रयत्न

दुर्योधन के मन को युद्ध से रोकने के लिए, श्रीकृष्ण जी कौरवों के पास जाकर उन्हें समझाने को तैयार हुए। युधिष्ठिर ने कहा कि वहाँ जाने से दुर्योधन

आपका और हमारा अपमान करेगा, इसलिये वहाँ नहीं जाना चाहिये। श्रीकृष्ण जी कहने लगे कि—जगत् की भलाई के लिऐ मुझे अपने मानापमान का विचार नहीं है। यह कहकर वे कौरवों के पास पहुँच गये।

हस्तिनापुर पहुँचकर पहले वे धृतराष्ट्र से मिले। फिर विदुर, कुन्ती और तब दुर्योधन से भेंट की। उन्होंने विदुर के घर ही भोजन किया। सभा के समय दुर्योधन और शकुनि विदुर के घर जाकर आदर पूर्वक श्रीकृष्ण जी को बुलाकर लाये। सभा में बड़े-बड़े विद्वान्, पण्डित, राजा-महाराजा और ऋषि-मुनि एकत्रित थे। श्रीकृष्ण जी ने सबके सामने कहा कि हम कौरवों और पाण्डवों का झगड़ा मिटाने आये हैं। परस्पर की फूट से कैसे-कैसे अनर्थ हो जाते हैं, यह अच्छी तरह उन्होंने समझाया। श्रीकृष्ण जी ने उन्हें यह भी कहा कि यदि तुम पाण्डवों को आधा राज्य नहीं देना चाहते हो, उन्हें इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणावत ये चार गाँव और पाँचवां एक कोई और गाँव ही दे दो। वे धर्मात्मा लोग इन्हीं से सन्तुष्ट हो जायेंगे। ऋषि-मुनियों ने भी यही कहा। धृतराष्ट्र ने भी श्रीकृष्ण की बात का ही समर्थन किया और कहा कि यह सब ठीक है किन्तु झगड़ा मिटाना या न मिटाना मेरे हाथ में नहीं है। दुर्योधन हिताहित की ओर ध्यान नहीं देता। धृतराष्ट्र की बात सुनकर श्रीकृष्ण जी ने भीष्म जी और विदुर आदि को दुर्योधन के पास समझाने के लिए भेजा। दुर्योधन ने क्रोधित होकर उत्तर दिया—मैं बिना युद्ध के पाँच गाँव तो दूर रहे, किन्तु सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा। श्रीकृष्ण जी ने कहा—दुर्योधन! क्रोध पाप का मूल है, शान्त हो जा। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण जी के कहने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और उन्हीं को पकड़ने की बात सोचने लगा। श्रीकृष्ण जी उसे अपना पराक्रम दिखाकर वहाँ से विदा हो गए।

इस समय धृतराष्ट्र दुर्योधन की बात और दुर्व्यवहार से बहुत दुःखी हो गए, उन्होंने महात्मा विदुर को बुलाया और उनसे राजधर्म का उपदेश लेना चाहा। महात्मा विदुर ने उस समय उन्हें जो उपदेश दिया, वह विदुर नीति नामक ग्रन्थ में अब तक प्रसिद्ध है।

भीष्म, द्रोण आदि धर्मात्मा मन से ही पाण्डवों की धार्मिकता पर प्रसन्न थे, किन्तु उन्होंने दुर्योधन का अन्न खाया था, इसलिए युद्ध में उसी की ओर रहे।

कर्ण को उपदेश

अब श्रीकृष्ण जी हस्तिनापुर से विराट नगर जा रहे थे, तब मार्ग में उन्हें कर्ण मिला। श्रीकृष्ण जी ने उससे कहा—हे कर्ण! तुम धर्म को अच्छी तरह जानने वाले हो, फिर पापी दुर्योधन का साथ क्यों देते हो? तुम कुन्ती के सबसे ज्येष्ठ पुत्र हो, तुम हमारे साथ चलो। कर्ण ने कहा—हे श्रीकृष्ण! आप हमारे कल्याण की बात कहते हो। पाण्डव वास्तव में बड़े सज्जन और हमारे भाई हैं! परन्तु मैं क्या करूँ! दुर्योधन की मुझ पर बड़ी कृपा है।

इसके बाद एक दिन कुन्ती कर्ण के पास जाकर कहने लगी—हे कर्ण! मैं तुम्हारी माता हूँ। युधिष्ठिर और तुम भाई-भाई हो। तुमको भाइयों का पक्ष लेना चाहिये। कर्ण ने कहा—पैदा होते ही तुमने तो मुझे फेंक दिया था, फिर अधिरथ नामक सारथि ने मेरा पालन-पोषण किया है। दुर्योधन ने मुझे अंगदेश का राजा बनाया। अब तक उनका ही पक्ष मैं लेता रहा हूँ, अब युद्ध होने पर मैं उन्हें छोड़ दूँ, तो लोग मुझे क्या कहेंगे! तुम मेरी माता हो, तुम कहती हो तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्ध में अर्जुन के सिवाय और किसी पाण्डव को मैं नहीं मारूँगा।

कुन्ती ने कहा—युद्ध तो अवश्य होगा। तुम शेष चारों भाइयों का ध्यान रखना। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे! इसके बाद कर्ण ने माता को प्रणाम किया और कुन्ती चली गई।

युद्ध की तैयारी

विराट नगर पहुँच कर श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर को कौरवों की सभा का सब वर्णन विस्तारपूर्वक समझा दिया। वे बोले—मैंने दुर्योधन को बहुत समझाया, पर वह नहीं माना। अब तो युद्ध ही एकमात्र उपाय है। कौरव अपनी सेना लेकर कुरूक्षेत्र के मैदान में जा रहे हैं। आप लोग भी चलने की तैयार कीजिए।

श्रीकृष्ण जी की सम्मति से पाण्डवों की सेना के सात सेनापति बनाये गए। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकी, चेकितान और भीमसेन। सबका संरक्षक अर्जुन को नियत किया गया। बाजे बजने लगे। वीरों के सिंहनाद से दिशायें गूँज उठीं। हाथी-घोड़े शब्द करने लगे। ब्राह्मणों के मंगलपाठ करने पर सेना चल पड़ी। कुरुक्षेत्र में पहुँचकर सेना एक समतल स्थान पर ठहर गई।

पाण्डवों के कुरुक्षेत्र में पहुँचने का समाचार पाकर उसी रात को दुर्योधन भी अपनी सेना लेकर मैदान में जा डटा। दुर्योधन की सेना के सेनापति थे—कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य, जयद्रथ, सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि और बाल्हीक। दुर्योधन ने सब के ऊपर संरक्षक बनने के लिए भीष्मपितामह से प्रार्थना की।

पाण्डवों की सेना सात अक्षौहिणी थी और कौरवों की सेना ग्यारह अक्षौहिणी। एक अक्षौहिणी में—1,09,350 पैदल, 65,610 घुड़सवार, 21,900 रथ और 21,900 हाथी होते हैं।

प्रातःकाल होने पर नित्यकर्म से निवृत्त होकर भोजन करके दोनों सेनायें युद्ध के मैदान में आमने-सामने आ खड़ी हुई। युद्ध के बाजे बजने लगे और वीरों की भुजायें फड़कने लगीं।



बाल महाभारत

6. भीष्म-पर्व

अर्जुन को गीता का उपदेश

कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान में आ गईं। कौरवों की सेना के सेनापति भीष्म पितामह थे। उन्होंने अपनी सेना का एक ऐसा व्यूह बनाया कि जिसमें घुस कर युद्ध करना शत्रुओं के लिए बड़ा कठिन था। यह देख अर्जुन ने भी अपनी सेना का सूची व्यूह बनाया। सब से आगे महाबलवान् भीमसेन को खड़ा किया गया। जब दोनों ओर की सेनायें लड़ने के लिए बिल्कुल तैयार हो गई, तब अर्जुन ने अपने सारथि श्रीकृष्ण जी से कहा कि हे भगवान्! मेरा रथ ऐसी जगह ले जाकर खड़ा कीजिये, जहाँ से मैं दोनों सेनाओं को अच्छी प्रकार देख सकूँ। अर्जुन की इच्छा से श्रीकृष्ण जी ने उसका रथ दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाकर खड़ा कर दिया। दोनों ओर से अति उच्च स्वर से शंखध्वनि हुई। इसके पश्चात् अर्जुन ने चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। उन्होंने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, दुर्योधन और कर्ण आदि को युद्ध के लिए खड़ा हुआ देखा। उनके हाथ से धनुष-बाण छूट गये और वे रथ से उतर कर नीचे खड़े हो गए। फिर वे श्रीकृष्ण जी से कहलने लगे–

होते शिथिल हैं अंग सारे, सूख मेरा मुख रहा।
तन काँपता मेरा सकल, रोमांच होता है महा।।

इच्छा नहीं जय, राज्य की है, व्यर्थ ही सुख-भोग है।
गोविन्द! जीवन राज्य सुख का क्या हमें उपयोग है?
जिनके लिए सुख-भोग, सम्पत्ति, राज्य की इच्छा रही।
लड़ने खड़े हैं आज तज धन और जीवन को वही।।

क्या भूमि! मधुसूदन! मिले, त्रैलोक्य का यदि राज्य भी।
वे मार लें पर शस्त्र मैं उन पर न छोडूँगा कभी।।
माधव! उचित वध है न इनका, बन्धु हैं अपने सभी।

निज बन्धुओं को मार कर, क्या हम सुखी होंगे कभी।

जब इस प्रकार अर्जुन को मोह हो गया अैर और वह युद्ध छोड़कर भागने लगा, तो श्रीकृष्ण जी ने उपदेश दिया। यह उपदेश बहुत विस्तृत था। इसी का नाम श्रीमद्भगवद्गीता है। वे अपने उपदेश में अर्जुन को समझाने लगे—

अर्जुन! तुम्हें संकट समय कैसे हुआ अज्ञान हे?
जो आर्य-अनुचित और नाशक स्वर्ग-सुख, सन्मान है।।

अनुचित नपुंसकता तुम्हें हे पार्थ! इसमें मत पड़ो।
यह क्षुद्र कायरता परन्तप! छोड़कर आगे बढ़ो।।

कह निज्ञ-वाक्य अशोच्य का तू व्यर्थ करता शोच भी।
जीते मरे को विज्ञजन चिन्ता नहीं करते कभी।।

ज्यों बालपन, यौवन, जरा इस देह में आते सभी।
त्यों जीव पाता देह और, न धीर मोहित हों कभी।।

इस देह में आत्मा अचिन्त्य सदैव अविनाशी अमर।
पर देह उसकी नष्ट होती, अस्तु अर्जुन युद्ध कर।।

है जीव मरने-मारने वाला नहीं जो मानते।
यह मारता-मारता नहीं, दोनों न वे जन जानते।।

मरता न लेता जन्म अब है फिर यहीं होगा कहीं।
शाश्वत, पुरातन, आज, अमर तन वध किये मरता नहीं।।

जैसे पुराने त्याग कर नर वस्त्र नव बदलें सभी।
यों जीर्ण तन को त्याग नूतन देह धरता जीव भी।।

आत्मा न कटता शस्त्र से है आग से जलता नहीं।
सूखे न आत्मा वायु से, जल से कभी गलता नहीं।।

छिदने न जलते और गलते न सूखने वाला कभी।
हे नित्य, निश्चल, थिर, सनातन और है सर्वत्र भी।।

सारे शरीरों में अमर आत्मा, न वध होता किये।
फिर प्राणियों का शोक यों तुमको न करना चाहिये।।

रण छोड़कर डर से भगा, अर्जुन कहेंगे सब यही।
सन्मान करते वीरवर जो तुच्छ जानेंगे वही।।

कहने-न-कहने की खरी-खोटी कहेंगे रिपु सभी।
सामर्थ्य-निन्दा से घना दुःख और क्या होगा कभी?।।

जीते रहे तो राज्य लोगे मर गए तो स्वर्ग में।
इस हेतु निश्चय युद्ध का करके उठो अरि वर्ग में।।
जय हार, लाभालाभ, सुख-दुःख सम समझकर सब कहीं।
फिर युद्ध कर तुमको धनुर्धर पाप यों होगा नहीं।।

जब श्रीकृष्ण जी अर्जुन को इस प्रकार का उपदेश कर चुके, तब वे अपना धनुष-बाण उठाकर फिर रथ पर बैठ गये और युद्ध के लिए तैयार हो गये।

युधिष्ठिरं की नम्रता

जब दोनों ओर की सेनाएं लड़ने को उद्यत हो रही थीं, उसी समय महात्मा युधिष्ठिर जी अपने रथ से उतर कर पैदल ही कौरवों की सेना की ओर चल पड़े। यह देखकर पाण्डव घबराए कि शत्रुओं की सेना में इस प्रकार अकेले जाना ठीक नहीं है, और उधर कौरव प्रसन्न हुए कि देखो! युधिष्ठिर हमारी सेना देखकर डर गए हैं और हमसे सन्धि करने के लिए आ रहे हैं। दुर्योधन बोला— मैं तो विना युद्ध के तिलभर भी भूमि नहीं दूँगा।

किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने क्या किया! वह भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और शल्य आदि गुरुजनों के पास गये, उनके चरणों में प्रणाम किया और उन्होंने युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया कि युद्ध में तुम्हारी अवश्य विजय होगी।

पहले दिन का युद्ध

पहले दिन भीष्म ने पाण्डवों की सेना में घुसकर उनके वीरों को इतनी बुरी तरह हराया कि उनमें हलचल मच गई। अभिमन्यु ने बड़ी वीरता के साथ भीष्म से युद्ध किया। भीष्म के बाणों से पीड़ित होकर पाण्डवों की सेना इधर-उधर भागने लगी। उस दिन पाण्डवों की हार हुई। युधिष्ठिर के चिन्ता करने पर पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने उन्हें साहस दिलाया।

दूसरे दिन का युद्ध

दूसरे दिन अर्जुन और भीष्म का घमासान युद्ध हुआ। द्रोणाचार्य के साथ धृष्टद्युम्न लड़ रहे थे। भीम ने भी कौरव-सेना का बहुत संहार किया। अभिमन्यु ने भी अपना अनुपम पराक्रम दिखाया। दुर्योधन अनेक राजाओं को साथ लेकर अभिमन्यु को घेरकर मारने लगे। अभिमन्यु ने भी अपना अनुपम पराक्रम दिखाया। दुर्योधन अनेक राजाओं को साथ लेकर अभिमन्यु को घेरकर मारने लगे। अभिमन्यु किंचित् भी भयभीत न हुआ और युद्ध करता

रहा। अभिमन्यु को शत्रुओं से घिरा हुआ देखकर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कौरव-सेना में प्रलय मचा दी। कौरवों की सेना भागने लगी। दूसरे दिन पाण्डवों की विजय हुई। सूर्यास्त हो जाने पर दोनों सेनाएं अपने-अपने शिविरों में लौट गयी।

तीसरे दिन का युद्ध

तीसरे दिन भीष्म बड़े क्रोध के साथ लड़े। अर्जुन बार-बार उनके बाणों को काटते रहे। बहुत देर तक मुकाबला हुआ, अर्जुन भीष्म का आदर करते थे, इसलिए क्रोध से नहीं लड़ रहे थे। श्रीकृष्णजी ने कई वार उन्हें सावधान होकर लड़ने के लिए कहा। जब उन्होंने ध्यान नहीं दिया, तब श्रीकृष्णजी स्वयं ही चक्र लेकर भीष्म की ओर भागे। अर्जुन ने उन्हें रोका और कहा कि अब मैं सावधान होकर लड़ूँगा। उसके बाद दोनों की ऐसी लड़ाई हुई कि अर्जुन से कौरवों की सेना में हाहाकार मचवा दी। इस दिन भी पाण्डवों की ही विजय हुई।

चौथे दिन का युद्ध

चौथे दिन भीष्म और अर्जुन का भयंकर युद्ध होने लगा। अभिमन्यु भी अर्जुन की सहायता के लिए अपना रथ लेकर उनके पास आ गया। दुर्योधन ने बहुत-सी सेना बुलाकर अर्जुन और अभिमन्यु दोनों को घेर लिया। पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न ने बहुत-से वीरों की बुलाकर कौरवों पर आक्रमण कर दिया।

धृष्टद्युम्न और शल्य का घोर संग्राम हुआ। बड़ी भयानक मार-काट मची। दुर्योधन और भीमसेन का भी मुकाबला हुआ। दुर्योधन ने अपनी सारी सेना को भीमसेन का वध करने की आज्ञा दी। भीमसेन ने उनके हाथी, रथ और घोड़ों को उठा-उठाकर दूर फैंक दिया। भीम की सहायता के लिए उनका पुत्र घटोत्कच भी आ गया था। इस दिन भी पाण्डवों की ही विजय रही।

पाँचवें दिन का युद्ध

पाँचवें दिन द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न के साथ और भीमसेन दुर्योधन के साथ युद्ध करने लगे। दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण अभिमन्यु के साथ लड़ा। दुर्योधन की आज्ञा से सब महारथियों ने अर्जुन का वध करने की इच्छा से उसे घेर लिया। अर्जुन ने सब के दाँत खट्टे कर दिये। इतने में सन्ध्या हो गई। भीष्म ने दुर्योधन को समझाया कि पाण्डवों से युद्ध में जीतना कठिन है, अब भी सन्धि कर लो, परन्तु दुर्योधन नहीं माना।

छठे दिन का युद्ध

इस दिन धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना का मकर-व्यूह बनाया और भीष्म ने कौरव-सेना का क्रौंच-व्यूह बनाया। व्यूह बनाकर दोनों सेनाएं युद्ध में प्रवृत्त हो गयीं। इस दिन भीमसेन ने धृतराष्ट्र के पुत्रों को बहुत मजा चखाया और दुर्योधन को घायल कर दिया। भीष्म और अर्जुन ने भी दोनों सेनाओं का पर्याप्त विनाश कर डाला।

सातवें दिन का युद्ध

दुर्योधन भीष्म को अपना घाव दिखाकर कहने लगा कि आप जैसे महारथियों के होते हुए भी मेरी यह दशा हुई। यह पीड़ा मुझसे सही नहीं जा रही है। भीष्म ने फिर सन्धि करने को कहा किन्तु दुर्योधन रोता हुआ बोला कि मुझे आप पर ही भरोसा था, आप ही ऐसी बातें कर रहे हैं। फिर भीष्म ने उसके घाव पर ऐसी दवा लगा दी कि उसका दर्द एकदम बन्द हो गया और वह युद्ध के लिए तैयार हो गया। दोनों ओर की सेनाओं में बड़ा तुमुल युद्ध हुआ। संध्या-समय युद्ध से थककर दोनों सेनाएं अपने शिविरों में चली गयी। वीरों के शरीरों से चुभे हुए अस्त्र-शस्त्र निकाले गए। सवने औषधियों के जल से स्नान किया। तत्पश्चात् भोजनादि करके सब सो गये।

आठवें दिन का युद्ध

आठवें दिन भी बड़ा घमासान युद्ध हुआ। पाण्डवों ने कौरवों की सेना का संहार कर डाला। दुर्योधन भीष्म से कहने लगे कि—यदि आप मन से लड़ते, तो पाण्डव हमारीं सेना का संहार नहीं कर सकते थे। इससे मालूम होता है कि आप उन पर दया करते हैं। उसने बारम्बार उन पर यह दोष लगाया। किन्तु वे वीरता से लड़ते रहे, और अन्त में उन्होंने दुर्योधन से कहा कि—कल सवेरे तुम मेरा बल देखना, या तो मैं स्वयं युद्ध में मारा जाऊँगा या उनका सर्वनाश कर डालूँगा।

नवें दिन का युद्ध

अगले दिन प्रातःकाल होते ही दुर्योधन ने भीष्म की प्रतिज्ञा सब को सुना दी। महारथियों से घिरे हुए भीष्म रणभूमि की ओर चल पड़े। दोनों सेनायों में भयंकर युद्ध होने लगा। इस दिन अभिमन्यु ने बहुत वीरता दिखाई और कौरवों की सेना व्याकुल होकर चीत्कार करने लगी। भीष्म ने इस दिन पाण्डवों के इतने वीर मारे जितने पिछले आठ दिनों में भी नहीं मारे थे। भीष्म के रण-कौशल

को देखकर दुर्योधन फूला न समाया।

यह देखकर युधिष्ठिर शोक करने लगे और युद्ध बन्द करने को कहने लगे। श्रीकृष्णजी ने उन्हें साहस दिलाया। युधिष्ठिर ने कहा कि चलो, भीष्म से उनके मारे जाने का उपाय पूछने लगे। भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! तुम सब मिलकर भी मुझे नहीं मार सकते हो। किन्तु यदि शिखण्डी को सामने करके तुम मुझसे युद्ध करोगे, तो मैं उसकी ओर नहीं देखूँगा, क्योंकि वह नपुंसक है। यह जानकर युधिष्ठिर और श्रीकृष्णजी वापिस आ गये।

दसवें दिन का युद्ध
भीष्म पितामह शर-शय्या पर

प्रातःकाल होते ही दोनों सेनायों में युद्ध छिड़ गया। उस दिन का-सा घमासान युद्ध और कभी नहीं हुआ था। कौरव सब मिलकर भीष्म की रक्षा करने लगे और पाण्डव भीष्म के वध का प्रयत्न करने लगे। भीम और अर्जुन ने बड़ा परिश्रम करके कौरवों की सेना को इधर-उधर भगाकर भीष्म के सामने शिखण्डी को खड़ा कर दिया।

भीष्म ने शिखण्डी की ओर से मुंह फेर लिया। शिखण्डी भीष्म पर बाणों की वर्षा करने लगे किन्तु भीष्म का कुछ भी नहीं बिगड़ा। भीष्म चुपचाप होकर रथ पर बैठ गये। यह देखकर अर्जुन ने शिखण्डी की ओट से भीष्म पर बाण बरसाने आरम्भ कर दिये। अर्जुन ने सैकड़ों बाणों से भीष्म का शरीर भर दिया। वे बाण शरीर में चुभ कर खड़े रहे। बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर भीष्म रथ से नीचे गिर पड़े। बाण इतने अधिक थे कि वे उन्हीं बाणों के ऊपर टिके रहे। भूमि पर उनका शरीर नहीं टिका। भीष्म के गिरते ही दोनों दलों में उदासी छा गई। जो जहाँ था, वहीं खड़ा रहा। फिर लड़ने की किसी की भी इच्छा न रही।

भीष्म ने अब फिर दुर्योधन को युद्ध बन्द करने के लिए समझाया, किन्तु वह नहीं माना। फिर उन्होंने श्रीकृष्णजी को कहा—सूर्य अभी दक्षिणायन में है, मैं उत्तरायण में प्राण त्याग करूँगा। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मुझमें इतनी शक्ति है कि जब तक चाहूँ, अपने प्राण रोक सकता हूँ।

सब लोग भीष्म को प्रणाम करके रोते-बिलखते अपने-अपने शिविरों को गये। भीष्म जी शर-शय्या पर पड़े रहे।



बाल महाभारत

7. द्रोण-पर्व

ग्यारहवें दिन का युद्ध

भीष्म पितामह के बाद कौरव-सेना की आँखें कर्ण की ओर देखने लगीं। कर्ण ने सबके सामने प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार भीष्म ने पाण्डवों से युद्ध किया था, उसी प्रकार मैं भी उनसे भी अधिक वेग से युद्ध करूंगा। या तो युद्ध में स्वयं मैं मर जाऊँगा, या उनकी सेना का संहार करके छोडूंगा। इसके बाद कर्ण भीष्म के पास गया और अपने अपराधों की क्षमा माँगते हुए उनसे आशीर्वाद लेने लगा। भीष्म जी ने उसे प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया। फिर वह युद्ध भूमि की ओर चल दिया। इस दिन सेनापति द्रोणाचार्य को बनाया गया।

दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। थोड़ी देर में द्रोणाचार्य ने पाण्डवों की सेना को तितर-बितर कर दिया। लड़ते-लड़ते शल्य और अभिमन्यु में युद्ध होने लगा। पहले वाणों से, फिर तलवार से और तदनन्तर गदाओं से युद्ध हुआ। शल्य के साथ गदा युद्ध करने से अभिमन्यु को बहुत रोका गया, किन्तु वह न माना। फिर भीम उसे पीछे करके स्वयं शल्य के सामने आये। दोनों में भयानक युद्ध हुआ। द्रोणाचार्य के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ। अर्जुन ने ऐसी करामात दिखाई कि गुरु जी के होश ठिकाने लग गये।

बारहवें दिन का युद्ध

द्रोणाचार्य के पराक्रम से दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ और आचार्य के पास आकर कहने लगा कि आप युधिष्ठिर को पकड़ कर मेरे पास ला दें, यही आपसे प्रार्थना है। आचार्य बोले—अर्जुन के रहते युधिष्ठर का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। इसलिए यदि किसी प्रकार तुम अर्जुन को यहां से दूर कर सको, तो मैं अवश्य ही युधिष्ठिर को पकड़ कर आपके सामने ला सकता हूँ।

त्रिगर्त देश के राजाओं ने कहा-हम अर्जुन को यहाँ से बहुत दूर युद्ध के लिए

बुलाकर ले जायेंगे। अर्जुन को अपनी वीरता का घमण्ड है, इसलिए वह हमारा निमन्त्रण कभी अस्वीकृत न करेगा।

त्रिगर्तकों का निमन्त्रण पाकर अर्जुन क्रोध से दाँत पीसता हुआ युधिष्ठिर से आज्ञा माँगने के लिए चला गया। युधिष्ठिर का आशीर्वाद और आज्ञा पाकर अर्जुन त्रिगर्तकों से भयंकर युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर गया। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। अर्जुन ने त्रिगर्तकों की सेना को मार भगाया।

पाण्डवों की सेना से अर्जुन को अलग हुआ जानकर कौरव ब़हुत प्रसन्न हुए। वे इस आशा से रणभूमि में आये कि आज अवश्य युधिष्ठिर पकड़े जायेंगे।

अर्जुन को दूर युद्ध में फँसे रहने का समाचार सुनकर द्रोणाचार्य को अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने की बात स्मरण हो आई। वे अवसर पाकर युधिष्ठिर की ओर बढने लगे। सत्यजित द्रोणाचार्य के सामने आये और उनसे घोर युद्ध करने लगे। अन्त में सत्यजित मारा गया और युधिष्ठिर युद्ध भूमि से भाग गये। द्रोणाचार्य उनके पीछे दौड़े। मार्ग में फिर युद्ध हुआ। द्रोणाचार्य ने पाण्डवों को परास्त कर दिया। इतने में ही अर्जुन भी आ गये। उन्होंने आते ही कौरवों की सेना को भगाना आरम्भ कर दिया। अर्जुन और द्रोणाचार्य का तुमुल युद्ध होने लगा।

तेरहवें दिन का युद्ध

अभिमन्यु-वध

दुर्योधन की आज्ञा से शेष बचे हुए त्रिगर्त देश के राजाओं ने फिर अर्जुन को युद्ध के लिए निमन्त्रण दिया।

अर्जुन उनका निमन्त्रण पाकर उनसे युद्ध करने चले गये। द्रोणाचार्य ने प्रतिज्ञा की कि आज अवश्य पाण्डवों के किसी एक महारथी का वध करूंगा। द्रोणाचार्य ने अपनी सेना की चक्रव्यूह की शक्ल में खड़ा किया। युधिष्ठिर इस व्यूह को देखकर चिन्ता करने लगे कि इस व्यूह को न तो हमने कभी देखा है और न ही सुना है। इस व्यूह को अर्जुन के सिवाय और कोई भी तोड़ नहीं सकता। हम अब क्या करें!

युधिष्ठिर जब इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे, तब अर्जुन के पुत्र वीर अभिमन्यु ने उनके पास आकर कहा कि इस व्यूह को तोड़ना तो मैं जानता हूँ, किन्तु इसमें से निकलना मुझे पिताजी ने नहीं सिखाया। इसलिये यदि आज्ञा हो तो मैं व्यूह को तोड़ दूँ।

भीमसेन आदि कहने लगे कि तुम इस व्यूह को तोड़कर अन्दर चलो, तुम्हारे पीछे-पीछे हम भी उसी मार्ग से आयेंगे और फिर सबको मार-काट कर बाहर निकल आयेंगे। युधिष्ठिर की आज्ञा से अभिमन्यु व्यूह के द्वार पर पहुँच गया और कौरवों की सेना से युद्ध करने लगा। अपने बाणों की वर्षा से सबको विफल करके अभिमन्यु अकेला ही अन्दर घुस गया। वहाँ इनको कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, भूरिश्रवा, दुःशासन और दुर्योधन आदि महारथियों ने घेरकर मारना आरम्भ किया। फिर भी अभिमन्यु के मन पर घबराहट का कोई चिन्ह दिखाई न दिया। वह दुगने उत्साह से इन महारथियों को पीड़ित करने लगा।

पाण्डव-सेना के बड़े-बड़े वीरों ने अभिमन्यु के पीछे-पीछे व्यूह में घुसने का बहुत यत्न किया। परन्तु, जयद्रथ बड़ा भारी धनुर्धर योद्धा था, उसके आगे किसी की न चली।

उसने किसी को अन्दर न जाने दिया। व्यूह के द्वार पर ही पाण्डवों से जयद्रथ का बड़ा भीषण युद्ध होने लगा।

अकेले बालक अभिमन्यु ने कौरवों के कई वीरों का नाश कर डाला। उनकी सेना में हाहाकार मच गया। अभिमन्यु की वीरता देखकर दुर्योधन क्रोध से जल-भुन उठा और सम्पूर्ण महारथियों से बोला—इस दुष्ट अभिमन्यु का शीघ्र वध करो। एक बालक हमारे सैनिकों को इस प्रकार मार रहा है, क्या तुम लोगों को लज्जा नहीं आती?

दुर्योधन की बात सुनकर अकेले बालक अभिमन्यु को कौरवों के सात माहरथियों ने घेर लिया। उनका महा-भयानक संग्राम होने लगा। द्रोणाचार्य बोले जब तक इसके हाथ में धुनष है तब तक कोई इसे जीत नहीं सकता। यह सुनकर कर्ण ने उसका धनुष काट डाला। कृपाचार्य ने अभिमन्यु के घोड़ों और सारथि को भी मार डाला। फिर सब महारथी मिलकर उस धनुष रहित बालक पर बाण बरसाने लगे। फिर वह तलवार से लड़ने लगा। द्रोणाचार्य ने तलवार भी काट डाली। फिर उसने रथ का चक्र उठा लिया। अश्वत्थामा ने वह चक्र भी काट डाला। फिर अभिमन्यु गदा से लड़ने लगा। दुःशासन के पुत्र और अभिमन्यु का भयंकर गदायुद्ध हुआ। एक साथ प्रहार करने से दोनों मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। जयद्रथ ने मूर्छित अभिमन्यु का सिर तलवार से काट डाला। कौरव शंखनाद करने लगे। जब पाण्डवों को व्यूह के द्वार पर अभिमन्यु के वध का समाचार मिला, तो वे आँसू बहाने लगे। अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा ने भी बहुत

विलाप किया—

फिर पीटकर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई,
कुररी-सदृश सकरुण गिरा से दैन्य दरसाती हुई।
बहुविध विलाप-प्रलाप वह करने लगी उस शोक में,
निज प्रिय-वियोग समान दुःख होता न कोई लोक में।।

वह कहने लगी—

मति, गति, प्रकृति, धृति, पूज्य, पति, प्रिय, स्वजन, शोभन-सम्पदा,
हा! एक ही जो विश्व में सर्वस्व था तेरा सदा।
यों नष्ट उसको देखकर भी बन रहा तू भार है,
हे कष्टमय जीवन! तुझे धिक्कार बारम्बार है।।

सन्ध्या होने पर युद्ध बन्द हो गया। सब अपने शिविरों में चले गये। अर्जुन भी त्रिगर्त के राजाओं को मारकर वापिस आ गया। जब उन्हें अभिमन्यु के वध का समाचार सुनाई दिया तो वे मूर्छित होकर गिर पड़े। श्रीकृष्णजी के समझाने पर उन्हें कुछ शान्ति हुई।

उसके बाद अर्जुन ने अभिमन्यु के वध का मूल कारण जयद्रथ को मानकर उसके वध की प्रतिज्ञा की। और कहने लगे—

बिषधर बनेगा रोष मेरा खल! तुझे पाताल में,
दावाग्नि होगा विपिन में, वाडव जलधि जल-जाल में।
जो व्योम में तू जायेगा तो वज्र वह बन जायेगा,
चाहे जहाँ जाकर रहे जीवित न तू रह पायेगा।।

छोटे-बड़े जितने जगत् में पुण्य-नाशक पाप हैं,
लौकिक तथा जो पारलौकिक तीक्ष्णतर सन्ताप हैं।
हों प्राप्त वे सब सर्वदा को तो विलम्ब बिना मुझे,
कल युद्ध में संध्या समय तक, जो मैं न मारूं तुझे।।

अथवा अधिक कहना वृथा है, पार्थ का प्रण है यही,
साक्षी रहे सुन ये वचन रवि, शशि, अनल, अम्बर, मही।
सूर्यास्त से पहले न जो मैं कल जयद्रथ-वध करूं,
तो शपथ करता हूँ स्वयं मैं ही अनल में जल मरूं।।

चौदहवें दिन का युद्ध

जयद्रथ-वध

अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर दुर्योधन और जयद्रथ बहुत घबराये। जयद्रथ को

द्रोणाचार्य ने उसकी रक्षा का वचन दिया। द्रोणाचार्य ने अपनी सेना का शकट व्यूह बनाया। उसके मध्य में कमल व्यूह और उसके भी मध्य में सूची व्यूह बनाया। फिर सूची व्यूह के अन्दर जयद्रथ को बड़े-बड़े महारथियों से रक्षित करके खड़ा कर दिया।

इधर युधिष्ठिर ने अर्जुन का हाथ श्रीकृष्णजी के हाथ में पकड़ा कर उसकी रक्षा करने की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन की रक्षा का वचन दिया।

दोनों सेनाओं में युद्ध होने लगा। द्रोणाचार्य और अर्जुन ने दोनों सेनाओं का महानाश कर डाला। सेना का संहार करते-करते अर्जुन जयद्रथ के पास तक पहुँचने ही वाले थे, किन्तु संध्या होने में समय इतना कम था। आकाश में नीले रंग का बादल का एक ऐसा टुकड़ा था, जो देखने में स्वच्छ आकाश मालूम पड़ता था। श्रीकृष्णजी इस टुकड़े को बहुत देर से देख रहे थे और उसके रहस्य को समझ रहे थे। जब सूर्य उस बादल के नीचे आया, तो सबने समझा कि सूर्य अस्त हो गया है और जयद्रथ का वध न कर सकने के कारण अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अर्जुन स्वयं ही अग्नि में जलकर अपने प्राण दे देगा। इसलिये कौरवों में हर्ष मनाया जाने लगा।

बोला जयद्रथ से वचन कुरुराज तब सानन्द यों,
हे वीर! रण में अब नहीं तुम घूमते स्वच्छन्द क्यों?
अब सूर्य के सम पार्थ को भी अस्त होते देख लो,
चलकर समस्त विपक्षियों को व्यस्त होते देख लो।।

यह कहकर दुर्योधन ने जयद्रथ को सबसे आगे लाकर खड़ा कर दिया। उधर अर्जुन के लिए चिता बनाकर तैयार की गई। अर्जुन चिता में बैठकर सबसे क्षमा-याचना कर रह था और श्रीकृष्ण से विदा माँग रहा था।

इस भाँति अर्जुन के वचन श्रीकृष्ण थे जब सुन रहे,
हँसकर जयद्रथ ने तभी ये विष-वचन उनसे कहे–

गोविन्द, अब क्या देर है, प्रण का समय जाता टला!
शुभ काम जितना शीघ्र हो, है नित्य उतना ही भला।।
जयद्रथ की बात सुनकर श्रीकृष्णजी को हंसी आ गई।

इतने में ही सूर्य भी उस बादल के टुकड़े में से बाहर निकल आया। श्रीकृष्णजी एकदम बोले–

'हे पार्थ! प्रण पालन करो, देखो अभी दिन शेष है।'

अर्जुन ने तत्काल ही पास रखा हुआ गाण्डीव उठाया और जयद्रथ को यमलोक पहुँचा दिया। पाण्डव प्रसन्न होकर अपने शिविर में चले गये।

रात्रि में युद्ध

जयद्रथ का वध देखकर दुर्योधन रोने लगा और द्रोणाचार्य के पास जाकर कहने लगा कि आप कपटी हो, ऊपर से तो हमारी बातें करते हो, किन्तु पाण्डवों पर दया करते हो और उनको नहीं मारते। दुर्योधन की बातें सुनकर द्रोणाचार्य बोले—मैं कई बार कह चुका हूँ कि अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता, तुम सन्धि कर लो। परन्तु तुम तो मानते ही नहीं। अच्छा, आज हम रात में भी युद्ध करेंगे।

ऐसा कहकर द्रोणाचार्य युद्ध करने के लिए चल पड़े। दोनों सेनाओं में रात को भी युद्ध हुआ। इस युद्ध में कर्ण ने अमोघशक्ति से घटोत्कच का वध कर डाला। घटोत्कच के वध से पाण्डव तो बड़े उदास हुए, परन्तु श्रीकृष्णजी प्रसन्न हुए।

श्रीकृष्णजी की प्रसन्नता देखकर अर्जुन ने पूछा कि क्या कारण है कि आप प्रसन्न हैं। श्रीकृष्णजी बोले—कर्ण के पास एक अमोघ शक्ति थी, वह उसने तुम्हारे लिये ही सुरक्षित रख छोड़ी थी, अब उसने उस शक्ति का प्रयोग घटोत्कच पर कर दिया है, इसलिए मैं प्रसन्न हूँ कि कर्ण अब तुम्हें किसी भी प्रकार मार नहीं सकेगा।

इस युद्ध में सब वीर थक गये थे, इसलिये युद्ध बन्द करके सो गये।

पन्द्रहवें दिन का युद्ध

द्रोणाचार्य का वध

दुर्योधन से अपमानित होने के कारण द्रोणाचार्य की आज युद्ध में बड़ा क्रोध था। वे पाण्डवों की सेना को छिन्न-भिन्न करते हुए रणभूमि में घुसने लगे। द्रुपद और विराट दोनों ने मिलकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। उन्होंने दोनों का सिर काट डाला। पाण्डव सेना में बड़ा हाहाकार मच गया। अर्जुन और भीमसेन बड़ा क्रोध करके कौरव सेना का वध करने लगे। श्रीकृष्ण जी ने भीमसेन से कहा कि हे भीम! द्रोणाचार्य का कोई भी वध नहीं कर सकेगा। भीम के पूछने पर वे बोले—यदि कोई असत्य ही कह दे कि अश्वत्थामा मारा गया है, तो पुत्र के शोक से वे शिथिल हो जाएँगे, तब उनका वध करना सम्भव है, अन्यथा नहीं।

श्रीकृष्ण जी की सम्मति से भीम एक अश्वत्थामा नामक हाथी को मार कर आए और द्रोणाचार्य के पास जाकर कहने लगे कि मैंने अश्वत्थामा को मार दिया है। अश्वत्थामा की मृत्यु के समाचार से द्रोणाचार्य दु:खी हुए और युद्ध बन्द करकें इस बात की सत्यता जानने के लिए युधिष्ठिर के पास गए। पूछने पर युधिष्ठिर ने कहा कि अश्वत्थामा मारा गया, पर हाथी। जब युधिष्ठिर ने हाथी शब्द कहा, तभी श्रीकृष्ण ने जोर-जोर से शंख बजवा दिये, इससे द्रोणाचार्य को हाथी शब्द सुनाई नहीं दिया।

पुत्र के शोक से व्याकुल होकर द्रोणाचार्य रथ से उतर कर पृथ्वी पर बैठ गये और प्राणायाम करने लगे। उनको इस अवस्था में बैठा देखकर धृष्टद्युम्न ने तलवार से उनका सिर काट डाला। अर्जुन आदि ने बहुत मना किया, पर उसने किसी की नहीं मानी।

आचार्य की मृत्यु से अर्जुन को बहुत शोक हुआ और वह रोने लगा। आचार्य के पुत्र को पिता की मृत्यु से बड़ा दुःख हुआ और उसने भीमसेन को मारने का बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ रहा।

सोलहवें दिन का युद्ध

प्रातःकाल होते ही दोनों सेनाएं युद्ध-क्षेत्र में आ गई। इस दिन कर्ण ने बड़े क्रोध के साथ युद्ध किया। नकुल और कर्ण में भयंकर युद्ध हुआ। कर्ण नकुल को मार डालता, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा को याद करके उसने नकुल को छोड़ दिया। अर्जुन को कौरव-सेना के दस राजाओं ने मिलकर घेर लिया और वाणों की वर्षा करके उन्हें ढक दिया। फिर अर्जुन को इतना क्रोध आया कि उन्होंने कौरवों की सेना को एकदम तितर-बितर कर डाला। सात्यकी ने भी कौरवों की सेना के बहुत से वीरों का संहार कर डाला।

सत्रहवें दिन का युद्ध
दुःशासन और कर्ण का वध

इस दिन कर्ण ने दुर्योधन से कहा कि श्रीकृष्ण जी को पाकर अर्जुन का बल बहुत बढ़ गया है, इसीलिए मैं कल पाण्डवों को नहीं जीत सका हूँ। आज आप मेरा पराक्रम देखना। यदि शल्य मेरे सारथि बन जायें, तो मैं अर्जुन को मार संकता हूँ। दुर्योधन ने शल्य से प्रार्थना की कि वह कर्ण के सारथि बन जायें, उन्होंने इस बात को पहिले तो अपना अपमान समझा, किन्तु बाद में दुर्योधन

के आग्रह पर वह सारथि बनना मान गए। उन्होंने साथ में यह शर्त भी रखी कि मैं कर्ण को चाहे कुछ भी कहूँ, लेकिन वह मुझे कुछ न कहे ।

शल्य को सारथि बनाकर कर्ण युद्ध करने लगा। शल्य बार-बार उनका उत्साह घटाते रहे। दोनों सेनायें आमने सामने डट गईं। रथों क घरघराहट अस्त्र-शस्त्रों की झनझनाहट, हाथी-घोड़ों की चीत्कार और वीरों के हुँकार से चारों दिशायें गूँज उठी।

भीमसेन और कर्ण का घमासान युद्ध होने लगा। दोनों वीर एक—दूसरे की सेना को मार—मार कर भगाने लगे। इतने में ही अर्जुन भी त्रिगत्तकों की विजय करके आ पहुँचें। उन्होंने आते ही कौरव सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। कर्ण महाराजा युधिष्ठिर से युद्ध कर रहे थे। नकुल और सहदेव उनकी रक्षा कर रहे थे। कर्ण ने बाण मारकर नकुल और सहदेव को अचेत कर दिया और फिर उसने कई बाण मारकर युधिष्ठिर को भी घायल कर दिया। इतने में ही शल्य कर्ण के रथ को दूसरी ओर ले गए।

युधिष्ठिर घायल होकर शिविर में आ गए। अर्जुन ने रणभूमि में जब युधिष्ठिर को नहीं देखा, तो वह उनकी दशा देखने के लिए शिविर में पहुँच गए। युधिष्ठिर को जब यह मालूम हुआ कि अर्जुन कर्ण को विना मारे ही यहाँ आए हैं, तो उन्होंने उनके गाण्डीव को धिक्कारा। गाण्डीव का अपमान अर्जुन न सह सके और क्रोध में आकर उन्होंने युधिष्ठिर को मारने के लिए तलवार खींच ली। श्रीकृष्ण जी के समझाने पर वह शान्त हुए और युधिष्ठिर से क्षमा माँगने लगे। फिर वह कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा करके वहाँ से रणभूमि में पहुँच गये।

कर्ण और अर्जुन में भयंकर युद्ध होने लगा। भीमसेन अर्जुन की रक्षा कर रहा था कि दुःशासन ने उसको युद्ध के लिए ललकारा। भीमसेन को क्रोध आ गया और ऐसी गदा उसके सिर में मारी कि वह दूर जाकर गिर पड़ा। फिर लातों से ठोकर मार कर उसकी नस-नस ढीली कर दी। तत्पश्चात् भीमसेन ने उसकी दाहिनी भुजा उखाड़कर दुर्योधन के रथ पर फेंक दी और उसके हृदय के खून को अंजली में लेकर अपने होठों से लगाया और अपने सारे शरीर में पोत लिया। भीम का यह विकराल रूप देखकर दोनों ओर की सेनायें भयभीत हो गई।

अर्जुन और कर्ण विना विश्राम किये लड़ते रहे। दोंनों वीरों के शरीरों से रुधिर की धारायें बहने लगीं। दोनों एक-दूसरे के वध की चेष्टा करने

लगे। दोनों में बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। अर्जुन कर्ण के बाणों को काटता था और कर्ण अर्जुन के बाणों को। अन्त में कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में धँस गया। शल्य ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु नहीं निकला। कर्ण चिन्ता में पड़ गया और रोकर कहने लगा—हे अर्जुन! मेरे रथ का पहिया कीचड़ में धँस गया है, जब तक न निकले, तब तक ठहर जाओ। तुम वीर हो, उच्च कुल में उत्पन्न हुए हो, अधर्म मत करो।

श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे कर्ण! तुम्हें धर्म इस समय याद आ रहा है। अब तक तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? श्रीकृष्ण जी की बातों से अर्जुन का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने ऐसे बाण मारे कि कर्ण का सिर कट कर अलग गिर पड़ा। कर्ण के मरते ही पाण्डवों की सेना में प्रसन्नता छा गई और कौरव सेना में हाहाकार मच गया। कर्ण की मृत्यु का समाचार सुनकर दुर्योधन बहुत देर तक रोता रहा।



बाल महाभारत

४. शल्य-पर्व

अठारहवें दिन का युद्ध

शल्य का वध

सत्रह दिनों तक के महायुद्ध में जब कौरवों की सेना का निरन्तर संहार ही होता गया तो कृपाचार्य दुर्योधन को समझाने लगे कि अब भी पाण्डवों से सन्धि कर लो। दुर्योधन बोले—हमने पाण्डवों को बहुत दुःख दिये हैं इसलिए पाण्डव अब हमसे सन्धि कैसे करेंगे? फिर अश्वत्थामा के पास जाकर दुर्योधन पूछने लगे कि अब सेनापति किसे बनाया जाए? उन्होंने सलाह दी कि शल्य बहुत बलवान है, उन्हीं को सेनापति बनाना चाहिए। दुर्योधन की प्रार्थना पर शल्य ने सेनापति बनना स्वीकार कर लिया।

श्रीकृष्ण जी की सम्मति से युधिष्ठिर शल्य के साथ लड़ने को तैयार हुए। दोनों में लड़ाई आरम्भ हो गई। शल्य ने क्रोध के आवेश में इतने बाण चलाये कि पाण्डवों की सेना में चारों ओर बाण ही बाण दिखाई देने लगे। युधिष्ठिर जब शल्य के बाणों से पीड़ित होने लगे, तब भीम ने शल्य के घोड़ों और सारथि को मार डाला। फिर शल्य ने तलवार उठाई। और वह युधिष्ठिर पर आक्रमण करने लगा। युधिष्ठिर के होंठ क्रोध से काँप रहे थे। उन्होंने एक बड़ी विकराल शक्ति उठाकर दोनों हाथों से पूरे बल के साथ शल्य के ऊपर छोड़ी। शक्ति के लगते ही शल्य का सिर धड़ से अलग हो गया। हर्षित होकर पाण्डवों ने एक साथ मिलकर शंखध्वनि की।

शल्य की मृत्यु के बाद कौरवों की सेना में भगदड़ मच गई। रोता हुआ दुर्योधन भागकर एक तालाब में आकर छिप गया।

युयुत्सु ने महाराज युधिष्ठिर के पास जाकर कहा कि कौरवों की स्त्रियाँ अपने पतियों के मरण से व्याकुल होकर हस्तिनापुर की ओर जा रही हैं। आप उन्हें पहुँचाने की हमें आज्ञा दें। युधिष्ठिर ने आज्ञा दे दी। युयुत्सु

विधवा रानियों को लेकर चल दिया। हस्तिनापुर के पास उनको विदुर मिले। कौरवों का सर्वनाश सुनकर विदुर रोने लगे और सबको राजमहल में ले गए। विधवा, रानियों को देख कर महल में भी हाहाकार मच गया।

गदा-युद्ध
दुर्योधन का वध

दुर्योधन भागकर द्वैपायन नामक तालाब में छिप गया था। कौरवों की सेना में इस समय अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को छोड़कर कोई वीर शेष नहीं है। पाण्डवों की शेष सेना को भी मारना चाहिए। दुर्योधन ने कहा कि इस समय तो मैं थका हुआ हूँ, प्रातः उठते ही हम पाण्डवों से युद्ध करेंगे। दुर्योधन की बात मानकर तीनों वहाँ से चले गए।

दुर्योधन को ढूँढते हुए पाण्डव भी यहाँ आ पहुँचे। दुर्योधन को देख युधिष्ठिर ने उसे युद्ध के लिए ललकारा। वह कहने लगा कि मेरे पास इस समय न तो कोई सवारी है, न अस्त्र-शस्त्र है और न ही सेना है। मैं अकेला ही एक-एक से लड़ सकता हूँ। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि अभिमन्यु को मारते समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था। इसके बाद युधिष्ठिर और दुर्योधन में इसी बात पर विवाद हो रहा था कि युद्ध कैसे हो और किसके साथ हो, कि इतने में ही श्रीकृष्ण जी के बड़े भाई बलराम भी वहाँ आ पहुँचे। दुर्योधन और भीमसेन दोनों गदा युद्ध में उनके शिष्य थे। वे कहने लगे कि मैं अपने दोनों शिष्यों का गदा-युद्ध देखने आया हूँ। वे उस स्थान से सबको एक दूसरे चौरस मैदान में ले गए और कहा कि गदायुद्ध के लिए यह स्थान ठीक है।

भीम और दुर्योधन में युद्ध छिड़ गया। दोनों एक दूसरे को परास्त करने की बात देखने लगे। दोनों के शरीरों पर गदा से कई घाव भी हो गए और दोनों का शरीर रुधिर से लथपथ हो गया।

गदायुद्ध के एक नियम के अनुसार कोई वीर दूसरे की कमर से नीचे प्रहार नहीं कर सकता था। भीमसेन ने दुर्योधन की जंघा तोड़ने की प्रतिज्ञा पहिले की थी। श्रीकृष्ण जो ने अवसर देखकर अर्जुन की ओर इशारा किया और अर्जुन ने अपनी जंघा ठोककर भीम को उसकी प्रतिज्ञा याद करा दी।

लड़ते-लड़ते भीम ने दुर्योधन की जंघा पर गदा का प्रहार कर डाला। जंघा पर प्रहार होते ही दुर्योधन अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके बाद भीम ने दुर्योधन के सिर पर लात मारी। भरी सभा में दुर्योधन ने द्रौपदी

का अपमान किया था, उस समय भीम ने जो प्रतिज्ञा की थी, वह आज पूरी कर दिखाई।

भीम का यह अन्याय सबको बुरा लगा। महाराज युधिष्ठिर को भी बहुत अनुचित प्रतीत हुआ। बलराम ने भीम का अन्याय देखा तो वह क्रोध में भरकर भीम को मारने चले। तब श्रीकृष्ण जी ने सबको समझाया और दुर्योधन के अन्याय तथा द्रोपदी के अपमान की बात सुना कर सबको शान्त कर दिया।

इस युद्ध को देखकर अश्वत्थामा को क्रोध आ गया। वह यह प्रतिज्ञा करके कि मैं आज ही पाण्डवों का नाश करता हूँ। कौरवों की सेना का सेनापति बनकर युद्ध के लिए निकल पड़ा।



बाल महाभारत

९. सौप्तिक-पर्व

अश्वत्थामा का भीषण अत्याचार

सोते हुए पाण्डव वंश का नाश

अश्वत्थामा ने कृपाचार्य और कृतवर्मा से कहा कि पाण्डवों ने मेरे पिता को धोखे से मारा है, और दुर्योधन को भी अधर्म से ही मारा है, इसलिए अब हमें भी इनका धोखे से ही नाश करना चाहिए। दोनों ने ऐसा करने से उसे बहुत रोका, परन्तु वह नहीं माना, अन्त में वे दोनों भी अश्वत्थामा की सहायता के लिए तैयार हो गए।

अश्वत्थामा रात को ही पाण्डवों के शिविर में गया। कृपाचार्य और कृतवर्मा को उसने द्वार पर खड़ा कर दिया कि कोई भागने न पाये। अपने डेरे में धृष्टद्युम्न निश्चिन्त सो रहा था। अश्वत्थामा ने सोते हुए धृष्टद्युम्न को एक लात मारी, इससे वह जाग उठा। धृष्टद्युम्न उठना ही चाहता था कि अश्वत्थामा ने एक पैर उसके कण्ठ पर और एक छाती पर रख कर मारना आरम्भ कर दिया। धृष्टद्युम्न ने अपने नाखूनों से अश्वत्थामा को चीरना चाहा, किन्तु वह कुछ न कर सका। इसके बाद अश्वत्थामा ने उसके मर्मस्थानों पर लात मारना आरम्भ किया और पशु की तरह घसीट कर उसे मार डाला।

धृष्टद्युम्न को मार कर वह उत्तमौजा और युधामन्यु आदि के डेरों पर गया और उन्हें भी पशु की तरह मार डाला।

धृष्टद्युम्न को मरा हुआ देख कर स्त्रियां जोर-जोर से विलाप करने लगीं। उनके रोने की आवाज से सब वीर उठ गए। वे व्यूह बनाने ही लगे थे कि इतने में ही अश्वत्थामा ने अपने बाणों से सबको मार डाला।

द्रौपदी के पाँचों पुत्र भी करुण-क्रन्दन सुनकर अपने डेरे से आये।

आते ही वे बाण-वर्षा करने लगे। अश्वत्थामा ने उन पाँचों का सर काट डाला। शिखण्डी पास ही खड़ा था, उसके भी दो टुकड़े कर डाले। अश्वत्थामा ने पाण्डवों के डेरों में आग लगा दी। फिर अग्नि के प्रकाश में ढूँढ-ढूँढ कर अश्वत्थामा सबको मारने लगा।

पाँचों पाण्डव, श्रीकृष्ण, और सात्यकी को छोड़कर पाण्डवों को सेना में कोई नहीं बचा।



बाल महाभारत

10. ऐषिक-पर्व

भीम द्वारा अश्वत्थामा की मणि लाना

प्रातःकाल होते ही पाण्डवों ने जब अपने डेरों की दुर्दशा देखी और अपने पुत्रों को मरा हुआ पाया, तो वे मूर्च्छित हो गये। श्रीकृष्ण जी और सात्यकी ने उनको उठाया और बहुत समझाया। युधिष्ठिर बहुत प्रकार से विलाप करने लगे। फिर युधिष्ठिर ने नकुल और द्रौपदी को बुलाने के लिए भेजा। द्रौपदी आई और रथ से उतर कर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

द्रौपदी व्याकुल होकर युधिष्ठिर से कहने लगी कि यदि आप अश्वत्थामा को नहीं मारेंगे तो मैं अन्न नहीं खाऊँगी और यहीं पर मर जाऊँगी। युधिष्ठिर कहने लगे कि इस समय तो अश्वत्थामा कहीं वन-पर्वत में छिपा होगा, बताओ तो सही, हम उसे कैसे मार सकते हैं? फिर द्रौपदी ने कहा कि जिस मणि को अश्वत्थामा अपने सिर पर लटकाए फिरता है, आप उसे छीन लें। जब तक मैं उसे आपके सिर पर सुशोभित न देखूँगी, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।

तदनन्तर वह भीमसेन के पास जाकर कहने लगी, आपने ही अब तक सदा मेरी रक्षा की है। अब भी आप ही मेरी रक्षा कर सकते हैं। अश्वत्थामा को मारकर आप मेरी रक्षा कीजिए। यह कहकर द्रौपदी फिर रोने लगी। भीमसेन द्रोपदी का रुदन न सह सका और अश्वत्थामा की मणि छीनने के लिए चल पड़ा। भीमसेन के चले जाने के बाद श्रीकृष्ण जी ने अश्वत्थामा का बल युधिष्ठिर को बताया। उन्हें चिन्ता होने लगी कि कहीं अश्वत्थामा भीमसेन को भी मार न डाले। इसलिए श्रीकृष्ण जी युधिष्ठिर और अर्जुन को रथ में बैठा कर भीम की रक्षा के लिए उसी के पीछे-पीछे चल पड़े।

उन्होंने सुना था कि अश्वत्थामा गंगा की ओर गया है, इसलिए वे भी उधर ही चल दिये। आगे चलकर उन्हें महात्मा व्यास जी का आश्रम मिला। उन्होंने देखा कि वहाँ अश्वत्थामा कुशा की चटाई ओढ़े और शरीर में धूलि

रमाये बैठा है।

उसे देखते ही भीम ने उस पर बाण चलाने आरम्भ कर दिये। जब उसने देखा कि भीम बाण चला रहा है और श्रीकृष्ण जी, युधिष्ठिर तथा अर्जुन भी उसके पीछे उसकी रक्षा के लिए हैं, तब वह बहुत घबराया। उस समय उसे और कुछ नहीं सुझा, एकदम उसने ब्रह्मशिर नामक अस्त्र चला दिया। उस अस्त्र के चलते ही चारों ओर आग की लपटें निकलने लगीं। यह देखकर श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि तुम भी ब्रह्मशिर अस्त्र चलाओ, नहीं तो भीम के प्राण नहीं बचेंगे।-अर्जुन ने श्रीकृष्ण जी की सम्मति से उसी अस्त्र का प्रयोग कर डाला। दोनों ओर से महा अस्त्रों का प्रयोग होने से चारों ओर अग्नि की लपटें निकलने लगीं। यह दिव्य अस्त्र उस समय आजकल के ऐटम बम से भी अधिक भयानक होते थे।

महर्षि व्यास दोनों को समझाने लगे कि तुमने यह अस्त्र चलाकर प्रजा का प्रलयंकर अनर्थ किया है। जहां घर में अस्त्र शान्त होंगे, उस भूमि पर बारह वर्ष तक जल नहीं बरसेगा और न ही अन्न उत्पन्न होगा। इसलिए शीघ्र ही तुम अपने अस्त्रों को शान्त कर दो। अश्वत्थामा शान्त करना नहीं जानते थे, इसलिए उनका अस्त्र श्रीकृष्ण जी ने शान्त किया।

इसके बाद भीमसेन बोला कि यदि अश्वत्थामा अपनीं अमूल्य मणि हमको दें दे तो हम इसे जीवित छोड़ देंगे, नहीं तो इसे भी वहीं जाना होगा जहाँ इसके पिता गए हैं। व्यास जी के कहने पर अश्वत्थामा ने मणि दे दी और फिर वे महर्षि व्यास के आश्रम में ही रहने लगे।

भीमसेन ने मणि ले जाकर द्रौपदी को दी। द्रौपदी मणि पाकर बहुत प्रसन्न हुई और उसे उसने युधिष्ठिर के सिर में पहना दिया।

युद्ध समाप्त

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया। इस अठारह दिन के युद्ध में लगभग 4 लाख रथ, 4 लाख हाथी, 10 लाख घोड़े और 20 लाख योद्धा भाग आए। कितना भयंकर युद्ध था। इस युद्ध में बड़े-बड़े विद्वान, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग बहुत-से मारे गए और बहुत से मर गए। सब विद्या ओर वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। लोग आपस में ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देश को दबा कर राजा बन बैठा। आर्यावर्त देश में सर्वत्र खण्ड-खण्ड राज्य हो गया। तभी से इस देश की अवस्था हीन होनी आरम्भ हो गई।



बाल महाभारत

11. स्त्री-पर्व

महाराजा धृतराष्ट्र का शोक

संजय प्रतिदिन युद्धभूमि में उपस्थित रहकर युद्ध देखा करते थे और सायंकाल जाकर सब वृतान्त महाराजा धृतराष्ट्र को सुनाया। यह सुनकर धृतराष्ट्र पछाड़ खाकर गिर पड़े और रोने लगे। वे संजय से कहने लगे कि मेरे पुत्र, मित्र और मन्त्री सब मारे गए। अब मैं जीकर केवल दुःख ही भोगूँगा। मैं अकेला जीकर करूँगा भी क्या। मैंने मूर्खतावश भीष्मपितामह की शिक्षा नहीं मानी, विदुर का उपदेश भी नहीं सुना। श्रीकृष्ण जी की बात पर भी ध्यान नहीं दिया। सब उसी का फल भोगना पड़ रहा है।

जब धृतराष्ट्र मिलाप कर रहे थे, तब संजय ने, महात्मा विदुर ने और महर्षि व्यास ने उन्हें समझाया कि अब शोक को छोड़िये, शोक किसी की सहायता नहीं करता, इस समय चारों ओर उदासी ही छाई है। अब उठ कर सबका प्रेत कर्म कीजिए। संसार में जो पैदा हुए हैं, वे अवश्य मरेंगे।

स्त्रियों का विलाप और वीरों का प्रेत कर्म

जब धृतराष्ट्र का शोक कुछ कम हुआ तब वे रोती हुई स्त्रियों को लेकर शीघ्रता से कुरुक्षेत्र की ओर चले। युधिष्ठिर आदि से मिलकर गान्धारी भी बहुत रोई और उसने भीम पर बहुत क्रोध किया। उसका क्रोध श्रीकृष्ण जी ने शान्त किया। जब कुन्ती ने देखा कि द्रौपदी अपने पुत्रों के शोक से व्याकुल हो रही है, तब कुन्ती भी रोने लगी। गान्धारी ने उसे शान्त किया। फिर वे सब कुरुक्षेत्र के मैदान में पहुँचे।

सब स्त्रियां अपने-अपने वाहनों से उतर कर पतियों को खोज-खोजकर भूमि पर लौटने लगीं। स्त्रियां सिर पीट-पीट कर रोई। जब स्त्रियों को रोते-रोते बहुत देर हो गई, तब श्रीकृष्ण जी ने सबको समझा कर शान्त किया।

इसके बाद धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर ने सबका प्रेत कर्म विधिपूर्वक किया।



बाल महाभारत

12. शान्ति-पर्व

युधिष्ठिर का शोकाकुल होना

युद्ध जीतने के पश्चात् महाराजा युधिष्ठिर अपने कुटुम्बियों और बन्धु-बांधवों की हत्या से बहुत शोकाकुल हो गये। वे भीम और अर्जुन से कहने लगे कि तुम्हारे ही पराक्रम से इस युद्ध में हमने विजय प्राप्त किया है। अब तुम नकुल और सहदेव मिलकर चारों भाई राज्य करो, मैं वन में निवास करूंगा।

महात्मा युधिष्ठिरों के वन में निवास करने की बात सुनकर उन्हें समझाने के लिए बहुत से वेदज्ञ-विद्वान्, साधु-सन्यासी महात्मा वहां आये। महात्मा नारद, वेद व्यास और श्रीकृष्णजी भी पधारे। सब आगतों का यथोचित सत्कार करके युधिष्ठिर फिर रोने लगे और बोले कि मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं। पितामह, भाइयों और गुरु का वध मेरे ही कारण हुआ है। अभिमन्यु को भी मैंने ही चक्रव्यूह तोड़ने के लिए भेजा था। इन पापों का प्रायश्चित अब नहीं हो सकता। स्वजन-शून्य को भोगकर मैं क्या करूंगा?

महात्मा नारद और महषि वेदव्यास ने उन्हें बहुत समझाया और धर्म शास्त्रों का उपदेश दिया, फिर भी उनका शोक कम नहीं हुआ।

इसके बाद भीम और अर्जुन ने कहा कि वन में आप ही कौरवों से युद्ध करने के लिए हमें उकसाते थे। हमारी यही अभिलाषा थी कि युद्ध जीतकर हम आपको गद्दी पर बैठा देखेंगे। यदि हमें यह मालूम होता कि अन्त में आप ऐसी बातें करने लगेंगे, तो हम क्यों व्यर्थ में अपने भाइयों का वध करते? इसके पश्चात् कुन्ती ने और फिर नकुल और सहदेव ने भी उन्हें राज्य करने को बहुत कहा किन्तु उनका मन किसी भी प्रकार शान्त नहीं हुआ।

महात्मा युधिष्ठिर की यह दशा देखकर उन्हें श्रीकृष्णजी समझाने लगे। श्रीकृष्णजी के उपदेश का असर जादू के समान होता था। उनका उपदेश सुनकर युधिष्ठिर शान्त होने लगे और श्रीकृष्णजी से बोले—हे महाराज! युद्ध से भी

आपने ही हमें पार लगाया है और मेरा शोक भी आपने ही दूर किया है, इसलिए अब आप जैसा कहेंगे, वैसा हो करूंगा।

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

महाविद्वान योगिराज श्रीकृष्णजी के उपदेश से शान्त होकर महात्मा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र को आगे करके भाइयों, ब्राह्मणों और ऋषि-मुनियों से घिरे हुए हस्तिनापुर को चले। मार्ग दर्शकों से भरा हुआ था। चारों ओर से महाराजा युधिष्ठिर की जय का शब्द सुनाई दे रहा था। युधिष्ठिर के आने का समाचार पाकर नगरवासियों ने नगर को खूब सजाया।

राजभवन में प्रवेश करने के उपरान्त महाराज अभिषिक्त किये गये और वे स्वर्ण के सिंहासन पर बैठ गये। उस समय प्रजा ने बड़े आनन्द से उन्हें भेंट दी। महाराजा की ओर से याचकों को असंख्य धन, वस्त्र, गाय और घोड़े आदि दिये गये।

अभिषेक हो जाने पर महाराजा युधिष्ठिर ने सबको उनके योग्य कार्यों पर नियुक्त किया। प्रजा की सुख-सुविधा के लिए कुएं, तालाब बनावाये,. बाग लगवाए और सड़कें बनवादीं। जिनके पति युद्ध में मारे गये थे, उनके भरण-पोषण का भार राज्य ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार युधिष्ठिर धर्म पूर्वक राज्य करने लगे।

भीष्म पितामह से उपदेश ग्रहण करना

श्रीकृष्णजी भी आदरसत्कारपूर्वक हस्तिनापुर में ही रहने लगे। पाण्डवों को राज्य करते हुए जब कुछ दिन बीत गये, तब एक दिन श्रीकृष्णजी महाराज युधिष्ठिर से बोले भीष्म पितामह सूर्य के उत्तरायण होते ही प्राण त्याग करेंगे, वे वेदों के ज्ञाता हैं। आप उनके पास चलकर उपदेश ग्रहण कीजिए। आपका बहुत कल्याण होगा।

श्रीकृष्णजी की बात मानकर वे दूसरे ही दिन भीष्म पितामह के पास चले गये। वहाँ जाकर वे धर्म और पाप के विषय में पूछने लगे।

शान्ति कब हो सकती है, इसका उपदेश करते हुए भीष्म जी ने कहा—

शान्ति नहीं, तब तक जब तक
सुख भाग न नर का सम हो।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।।



बाल महाभारत

13. अनुशासन-पर्व

भीष्म पितामह का प्राण-त्याग

भीष्म पितामह की आज्ञा से युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौट आये। जब सूर्य उत्तरायण होने लगा, तब वे बहुत से वेदपाठी ब्राह्मणों तथा अगर, तगर, चन्दन और घी आदि सामग्री लेकर अपने साथियों सहित भीष्म जी के पास पहुँचे। उन्हें आया देखकर भीष्म जी कहने लगे—हे युधिष्ठिर! अच्छा हुआ, जो तुम आ गये। बाणों की शय्या पर मैं आज अट्ठावन रात सोया हूँ। यह मार्च का चान्द्रमास है, शुक्ल पक्ष है, अब मेरे प्राण त्यागने का समय समीप आ रहा है।

तदनन्तर उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा कि आप शोक को छोडिये। जो होना था, सो हुआ। इन पाण्डवों को ही पुत्रों के समान पालना कीजिये।

इसके पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्णजी से कहा कि अब मैं प्राणों का त्याग करूंगा। युद्ध में मेरा कोई अपराध नहीं था। मैंने दुर्योधन को बहुत समझाया, वह नहीं माना। अन्त में सब का संहार करवा के अपने आप भी मारा गया। यदि मुझसे कोई अनुचित कार्य हुआ हो तो क्षमा करना।

फिर वे युधिष्ठिर से कहने लगे—हे युधिष्ठिर! तुम प्रजा का पालन अच्छी तरह करना और गुरूजनों का कभी तिरस्कार मत करना।

इस प्रकार सबको उपदेश देकर वे सब लोगों की ओर देखकर कहने लगे—अब लोग मुझे विदा दें, अब मैं प्राण-त्याग करूंगा। सबके देखते-ही-देखते उन्होने अपने प्राण त्याग दिये। सब खड़े आश्चर्य से देखते रहे।

इसके बाद चन्दन की चिता में उनका दाह-संस्कार करके, गंगा में स्नान करने के बाद सब लोग हस्तिनापुर लौट आये।



बाल महाभारत

14. अश्वमेध-पर्व

श्रीकृष्ण का द्वारका जाना

जब युधिष्ठिर का राज्य-कार्य समुचित रीति से चलने लगा, तब उनकी अनुमति लेकर श्रीकृष्णजी द्वारका चले गये। बहुत दिनों के बाद श्रीकृष्ण जी को आया देखकर सब द्वारकावासी बहुत प्रसन्न हुए। अपने पुत्र का दर्शन करके व्रसुदेव और देवकी हर्ष से गद्‌गद हो गए और उन्हें कण्ठ से लगाया।

महाभारत के युद्ध का समाचार सुनने के लिए सब यादव लोग श्रीकृष्णजी को घेरकर बैठ गये। उन्होंने अभिमन्यु के वध का समाचार छोड़कर शेष सब समाचार सुना दिया। फिर पूछने पर जब अभिमन्यु के वध का समाचार सुभद्रा आदि को मिला तो वे बहुत रोने लगी। श्रीकृष्णजी ने उन्हें बहुत समझा-बुझाकर शान्त किया।

परीक्षित का जन्म

युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए श्रीकृष्णजी को पहले से ही निमन्त्रण दे रखा था। यज्ञ का समय निकट जानकर वे अनेक यादव वीरों को साथ लेकर हस्तिनापुर आ गये। धृतराष्ट्र, विदुर और युयुत्सु आदि ने उनका अत्यन्त सत्कार किया।

आदर-सत्कार के बाद यादव लोग बैठे ही थे कि उसी समय उत्तरा के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। बालक देखने में मृतक जान पड़ता था। यह देखकर राज परिवार में शोक छा गया। श्रीकृष्णजी महल में गये और उन्होंने उचित औषधि आदि से उसे सचेत कर दिया। इससे सब में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। श्रीकृष्णजी ने उस बालक का नाम परीक्षित रखा।

अर्जुन का दिग्विजय

यज्ञ का समय आने पर महर्षि वेद व्यास की आज्ञा से महाराजा युधिष्ठिर नें यज्ञ का घोड़ा छोड़ा और घोड़े की रक्षा के लिए धनुर्धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन

को नियुक्त कर दिया। अर्जुन धनुष धारण करके घोड़े के पीछे-पीछे चले।

घोड़ा त्रिगर्त देश में जा पहुँचा। वहाँ के राजपुत्र अर्जुन के सामने आए। वे पाण्डवों से युद्ध का बदला लेना चाहते थे। अर्जुन ने उन्हें कहा कि महाराजा युधिष्ठिर ने कहा है कि जो राजा युद्ध में मारे गये हैं, उनके परिवारों को कष्ट मत देना। इसलिए युद्ध छोड़कर तुम यज्ञ में सम्मिलित होना। मैं तुमको निमन्त्रण देता हूँ। त्रिगर्त के राजकुमार नहीं माने और बराबर बाण बरसाने लगे। फिर अर्जुन ने भी अपना गाण्डीव उठाकर उन पर ऐसी बाणवर्षा की कि वे उसके बाणों से कट-कटकर गिरने लगे। तब वे अर्जुन की शरण में आए और उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

इसके पश्चात् घोड़ा मणिपुर पहुँचा। मणिपुर की राजकन्या अर्जुन की स्त्री थी, उसके गर्भ से बभ्रुवाहन उत्पन्न हुआ था। इस समय वही वहाँ की गद्दी पर बैठा था। पिता के आने का समाचार पाकर बभ्रुवाहन प्रसन्न हुआ और बहुत-सी धन-सामग्री लेकर मन्त्रियों के साथ अर्जुन की भेंट करने आया। अर्जुन ने वह भेंट वापिस कर दी और बभ्रु वाहन पर तिरस्कार करके कहा—तुम क्षत्रिय नहीं हो, वैश्य हो, अर्जुन का पुत्र कभी युद्ध से विमुख नहीं हो सकता। हम तो घोड़े की रक्षा करते हुए युद्ध के लिए आए हैं और तुम कायरों की भांति हमारी खुशामद करते हो। तुम्हें धिक्कार है।

अर्जुन द्वारा तिरस्कार सुनकर बभ्रुवाहन का क्रोध भड़क उठा और उसने धनुष उठा लिया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। बभ्रुवाहन ने एक बाण मारकर अर्जुन को अचेत कर दिया। अर्जुन भूमि पर गिर पड़ा। अर्जुन ने भी बभ्रुवाहन को घयाल किया था। वह भी मूर्छित होकर ग़िर पड़ा। यह सुनकर बभ्रुवाहन की माता रणभूमि में आई और अर्जुन के पास पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

कुछ देर में बभ्रुवाहन की मूर्छा भंग हुई। उसने अपनी माता और पिता को इस दशा में देखकर वैद्यों से उनकी चिकित्सा कराई। दोनों की मूर्छा जाती रही। पुत्र की वीरता देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए।

अश्वमेध यज्ञ

अर्जुन अनेक देशों को जीतकर और उन्हें यज्ञ में आने का निमन्त्रण देकर हस्तिनापुर लौट आये। निश्चित समय पर यज्ञ का कार्य आरम्भ हुआ। व्यास आदि महर्षियों ने युधिष्ठिर के हाथ से उसे विधिवत् समाप्त कराया। महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों और निर्धनों को बहुत दान-दक्षिणा दी। यज्ञ समाप्त होने के कई दिन बाद तक हस्तिनापुर में बड़ी धूमधाम रही। यज्ञ में आये हुए राजा लोगों को सम्मानपूर्वक विदा कर दिया गया।



बाल महाभारत

15. आश्रमवासिक-पर्व

धृतराष्ट्र का वन-गमन

महाराजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र और गान्धारी का सब प्रकार से सम्मान और सेवा करते थे। एक प्रकार से राज्य का स्वामी उन्हीं को बना रखा था। महाराजा युधिष्ठिर ने यह कह दिया था कि यदि कोई धृतराष्ट्र या दुर्योधन की भूलों की चर्चा करके उन्हें दुःखी करेगा तो वह हमारा शत्रु होगा। इस प्रकार धृतराष्ट्र अपने पुत्रों का वियोग भूल-से गए थे।

एक दिन भीमसेन ने धृतराष्ट्र और गान्धारी के मुख से दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन की प्रशंसा सुनी। उनकी प्रशंसा सुन कर भीम कहने लगे कि जिन भुजाओं से तुम्हारे पुत्र पीसे गए हैं, उनकी प्रशंसा तुम क्यों नहीं करते?

भीम के ये वचन उनके हृदय में कांटे के समान चुभ गए। इन्हीं वाक्यों को याद करके वे चिन्तित रहने लगे, किन्तु यह भेद युधिष्ठिर पर प्रकट नहीं हुआ।

एक दिन धृतराष्ट्र युधिष्ठिर से कहने लगे--मेरे ही दोषों से कुरुकुल का नाश हुआ है। मैं शोक घटाने के लिए ही एक बार भोजन करता हूँ और चटाई पर सोता हूँ। गान्धारी भी ऐसा ही करती है। हमें तुम्हारे पास रहते अब बहुत दिन बीत गए। हमारी आयु अब वन जाने के योग्य हो गई है। और अब हम वन में भी जाना चाहते हैं। इसलिए हमें वन जाने की आज्ञा दो और तुम राज्य करो।

युधिष्ठिर बोले—हे राजन्! आप मेरे पिता, गुरु और रक्षक हैं। आपकी सेवा करना हमारा परम धर्म हैं। हमें आपके निराहार रहने और चटाई पर सोने की बात मालूम नहीं थी। आप हमारा अपराध क्षमा करें।

फिर धृतराष्ट्र कहने लगे कि है युधिष्ठिर! तुमने हमें बड़ा सुख दिया है। तुम हमारे लिए शोक मत करो। अन्त में उन्हें प्रजा-पालन का उपदेश देकर

धृतराष्ट्र गान्धारी के साथ वन में चले गए।

धृतराष्ट्र आदि का प्राणत्याग

धृतराष्ट्र के साथ विदुर, संजय, गान्धारी और माता कुन्ती भी वन में गई थी। वे महर्षि वेद व्यास के आश्रम में जाकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने वानप्रस्थ की दीक्षा ली और घोर तप करना आरम्भ कर दिया।

एक बार युधिष्ठिर आदि उनसे मिलने के लिए वन में पहुँचे। वहाँ युधिष्ठिर ने सबको प्रणाम किया और उनका कुशल-क्षेम जाना। तत्पश्चात् धृतराष्ट्र ने भी राज्य का समाचार पूछा।

युधिष्ठिर ने जब विदुर को वहाँ नहीं देखा तो धृतराष्ट्र ने बताया कि वह तो बड़ी घोर तपस्या कर रहे हैं। कभी-कभी इधर आ जाते हैं। इतने में ही विदुर जो उधर आते दिखाई दिए। युधिष्ठिर उनके पीछे जाकर कहने लगे—मैं युधिष्ठिर हूँ, आपको प्रणाम करता हूँ। विदुर ने उनकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया और गहन वन में घुस गए। युधिष्ठिर उनके पीछे-पीछे भागे। विदुर एक वृक्ष के पीछे खड़े हो गए। युधिष्ठिर उनके सामने जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। विदुर ने वहाँ खड़े-खड़े ही अपने प्राण त्याग दिये।

उसके बाद धृतराष्ट्र के आश्रम में कई दिन रहकर युधिष्ठिर आदि हस्तिनापुर चले गए। इसके बाद दो वर्ष के पश्चात् नारद मुनि ने युधिष्ठिर को समाचार दिया कि गंगाद्वार में मुनियों से सुना है कि वहाँ धृतराष्ट्र, कुन्ती और गान्धारी कठिन तपस्या करने के बाद वन की अग्नि में भस्म होकर स्वर्गलोक को चले गए हैं। यह शोक-सम्वाद सुनकर पाण्डवों को महान् खेद हुआ।



बाल महाभारत

16. मौसल-पर्व

यदुवंश का नाश

महाभारत के युद्ध में सब बलवान वीरों का संहार हो चुका था। किसी की चढ़ाई का भय तो रहा ही नहीं था, इसलिए यादव लोग निश्चिन्त हो गए। वे निर्भय होकर आहार-विहार करने लगे। वे दुर्व्यसनी हो गए और शराब पीने लगे। यादवों के यहां से विद्वानों का आदर जाता रहा। शराब पीना, हँसी-दिल्लगी करना और छोटी-छोटी बातों में ही आपस में लड़ता-झगड़ता उनका काम रह गया।

श्रीकृष्णजी ने यादवों को तीर्थयात्रा करने की सम्मति दी। किन्तु वहाँ भी वे स्वतन्त्रता से विचरने लगे। श्रीकृष्ण जी और बलराम के सामने भी वे शराब पीकर आपस में लड़ने-झगड़ने लगे।

सात्यकी और कृतवर्मा एक दिन शराब से मस्त होकर आपस में लड़ पड़े। लड़ाई में उन्होंने सारे यदुवंश का नाश कर दिया। केवल श्रीकृष्ण जी और उनके सारथि दारुक हो शेष रहे।

शराब मनुष्य का महान् शत्रु है, इससे उसका सर्वनाश हो जाता है।

बलराम और श्रीकृष्णजी का स्वर्गवास

यदुवंशियों की दुर्दशा देखकर बलराम तो पहले ही वन में चले गए थे। उसके बाद अपने पिता से आज्ञा लेकर कृष्ण जी भी वन में चले गए। यादवों का नाश देखकर उनसे सूनी द्वारका में न रहा गया। जब वे वन में बलराम के पास पहुँचे तभी बलराम का स्वर्गवास हो गया।

श्रीकृष्ण जी वन में अकेले घूमने लगे। एक दिन शोकाकुल होकर वे पृथ्वी पर बैठ गए। उन्होंने ध्यानावस्थित होकर प्राणों को खींचा। उसी समय एक व्याध ने दूर से उन्हें मृग समझकर एक बाण मारा। बाण उनके पैर में लगा और

रक्त बहने लगा। मृग को उठाने की इच्छा से व्याध जब उनके निकट आया, तो अपनी भूल पर बार-बार क्षमा माँगने लगा। श्रीकृष्ण जी ने उसे क्षमा कर दिया और उसी समय अपने प्राणों का भी त्याग कर दिया।

श्रीकृष्ण जी की इच्छा के अनुसार अर्जुन द्वारका गए। श्रीकृष्ण जी की मृत्यु का समाचार पाकर वसुदेव को बहुत दुःख हुआ। उस रात अर्जुन वसुदेव के महल में ही रहे। प्रातःकाल होते ही वसुदेव ने भी शरीर-त्याग कर दिया। अर्जुन ने उसका प्रेत-कर्म किया। इसके पश्चात् अर्जुन यदुवंशियों की स्त्रियों को लेकर हस्तिनापुर चले गए।



बाल महाभारत

17. महा प्रास्थानिक-पर्व

युधिष्ठिर आदि का स्वर्ग के लिए प्रस्थान

श्रीकृष्ण जी के परलोक-गमन का समाचार सुनकर पाण्डवों को बड़ा शोक हुआ। सबने इस संसार को असार और अनित्य समझा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि परीक्षित को राज्य सौंप कर शेष जीवन वन में व्यतीत करेंगे।

महाराज युधिष्ठिर ने परीक्षित का शिष्य रूप से कृपाचार्य के हाथों में सौंप दिया। युयुत्सु को राज्य भार सौंपा। ब्राह्मणों और ऋषि-मुनियों को सन्तुष्ट किया गया। निर्धनों को धन दिया गया। पाण्डवों ने राजसी वस्त्र तथा आभूषण उतार कर वनवासियों का वेष धारण कर लिया।

युधिष्ठिर ने प्रजा के मुख्य लोगों को बुलाकर राज-काज में सहायता देने के लिए कहा और उनसे विदा माँगी। जुए में हार कर वन जाते समय पाण्डवों का जो वेष था, आज फिर उसी वेष में उन्हें वन जाते हुए देखकर प्रजा फूट-फूट कर रोने लगीं, उनकी आंखों से अश्रुधारा रुक ही नहीं रही थी।

कृपाचार्य और युयुत्सु की सहायता से परीक्षित राज्य करने लगे।

युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी को लेकर पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाओं के बाद उत्तर दिशा में हिमालय पर गये।

जब वे पर्वत पर चढ़ रहे थे तब श्रीत की अधिकता के कारण द्रौपदी गिर पड़ी और फिर न उठ सकी, कुछ दूर चलने पर सहदेव, फिर नकुल, उसके बाद अर्जुन और फिर भीमसेन भी गिर पड़े।

भीम ने एक-एक करके सबके गिरने का कारण युधिष्ठिर से पूछा। उन्होंने आगे चलते-चलते उतर दिया कि—

द्रौपदी अर्जुन से विशेष प्रेम रखती थी। सहदेव को अपनी विद्वता का घमण्ड था, नकुल को अपने रूप पर बड़ा गर्व था, अर्जुन में जैसा पराक्रम था, शत्रुओं के सामने इन्होंने वैसा पराक्रम प्रकट नहीं किया, और हे भीमसेन।

तुम अपने बल की बड़ी बड़ाई किया करते थे, इसी दोष से तुम गिरे हो।

इस प्रकार द्रौपदी और चारों भाई बर्फ में गिरकर गल गए। युधिष्ठिर का मन फिर भी विचलित नहीं हुआ और न ही उन्होंने पीछे की ओर मुड़कर देखा। हिमालय की बर्फ ढकी हुई चोटियों को पार करके महाराजा युधिष्ठिर फिर तिब्बत में पहुंच गए। शरीर-त्याग करने के विचार से उन्होंने एक अत्यन्त शीतल जल की नदी में डुबकी लगाई और शरीर त्याग दिया।

महाराजा युधिष्ठिर ने 36 वर्ष 8 मास 25 दिन तक राज्य किया और फिर राजा जनमेजय ने 84 वर्ष 7 मास 23 दिन राज्य किया। इस प्रकार महाराजा युधिष्ठिर से लेकर महाराज यशपाल तक 124 आर्य राजाओं ने 4157 वर्ष 9 मास, 14 दिन तक इस भूमण्डल पर चक्रवर्ती राज्य किया। महाभारत के युद्ध के पश्चात् भारत की ऐसी दुर्दशा हो गई है।



भीष्म पितामह का प्राण-त्याग

भीष्म पितामह की आज्ञा से युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौट आये। जब सूर्य उत्तरायण होने लगा, तब वे बहुत से वेदपाठी ब्राह्मणों, तथा अगर, तगर, चन्दन और घी आदि सामग्री लेकर अपने साथियों सहित भीष्म जी के पास पहुँचे। उन्हें आया देखकर भीष्म जी कहने लगे–हे युधिष्ठिर ! अच्छा हुआ, जो तुम आ गये। बाणों की शय्या पर मैं आज अट्ठावन रात सोया हूँ। यह माघ का चान्द्रमास है। शुक्ल पक्ष है, अब मेरे प्राण त्यागने का समय समीप आ रहा है।

तदनन्तर उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा कि आप शोक को छोड़िये। जो होना था, सो हुआ। इन पांडवों को ही पुत्रों के समान पालना कीजिये।

इसके पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्णजी से कहा कि अब मैं प्राणों का त्याग करूंगा। युद्ध में मेरा कोई अपराध नहीं था। मैंने दुर्योधन को बहुत समझाया, वह नहीं माना। अन्त में सब का संहार करवाके अपने आप भी मारा गया। यदि मुझसे कोई अनुचित कार्य हुआ हो तो क्षमा करना।

फिर वे युधिष्ठिर से कहने लगे – हे युधिष्ठिर ! तुम प्रजा का पालन अच्छी तरह करना और गुरुजनों का कभी तिरस्कार मत करना।

इस प्रकार सबको उपदेश देकर वे सब लोगों की ओर देखकर करने लगे–अब आप लोग मुझे विदा दें, अब मैं प्राण त्याग करुंगा। सबके देखते ही देखते उन्होंने अपने प्राण–त्याग दिये। सब खड़े आश्चर्य से देखते रहे।

इसके बाद चन्दन की चिता में उनका दाह–संस्कार करके, गंगा में स्नान करने के बाद सब लोग हस्तिनापुर लौट आये।

जय प्रकाश शास्त्री